ikS<+ f'k{kk

जुलाई–सितम्बर 2016

वर्ष 60 अंक–3

lEikn d e.My

प्रो. भवानीशंकर गर्ग

(संरक्षक)

श्री मृणाल पंत

श्री ए.एच.खान

डा. सरोज गर्ग

श्री दुर्लभ चेतिया

डा. डी.के.वर्मा

डा. उषा राय

डा. मदन सिंह

श्री एस.सी. खंडेलवाल

श्री राजेन्द्र जोशी

lEikn d

डा. मदन सिंह

lgk;d lEikn d

बी. संजय

bl vad e

सम्पादकीय

भारत में प्रौढ़ शिक्षा की दिशाएं
–योगेन्द्र लाल दास 5

माध्यमिक स्तर पर शासकीय शहरी एवं ग्रामीण विद्यालयों के विद्यार्थियों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन
–रमा शंकर 12

और उसका मन बदल गया – लघु कथा
– लक्ष्मी रूपल 20

भ्यारखोला (मलिन बस्ती) राजकीय प्राथमिक विद्यालय राजपुर – एक अध्ययन
–अस्मा
–भीमा मनराल 21

संविधान सभा का समापन भाषण 32

हमारे लेखक 44

eY;% : i;s 200@&okf"kd

if=dk esa O;Dr ys[kdksa ds fopkj mudss O;fDrxr fopkj gSa ftuds fy, laik ,oa lEikndh lgefr vfuok;Z ugha gSA

Census 2011 - Database for Literacy Programmes

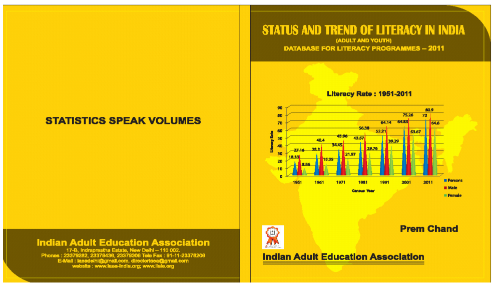

Indian Adult Education Association has brought out recently a book titled **Status and Trend of Literacy in India (Adult and Youth) Database for Literacy Programmes – 2011**. This book has 200 pages with 8 chapters and 17 tables. Annexure also gives district-wise information regarding literates, illiterates and literacy rates by sex and rural/urban areas for the age group 7 and above and illiterates, literates and literacy rates by sex and areas for adolescent (10-19) and youth (15-24) population – 2011.

The price of the book is Rs.800/- (US $ 90) per copy. Purchase order can be made by mail (directoriaea@gmail.com) indicating number of copies required and Demand Draft for total amount sent by post. The Demand Draft be drawn in favour of "Indian Adult Education Association" payable at New Delhi.

निर्धारित समय–सीमा से पचास वर्ष पीछे चल रहा है भारत – यूनेस्को

दिनांक 6 सितम्बर 2016 को यूनेस्को द्वारा ग्लोबल एजुकेशन मॉनिटरिंग रिपोर्ट – 2016 जारी की गई। रिपोर्ट में भारत की शैक्षिक उपलब्धियों के बारे में गम्भीर चिन्ता व्यक्त की गई है। यह रिपोर्ट कहती है कि तमाम कोशिशों के उपरान्त भारत में शैक्षिक प्रगति की जो वर्तमान गति है और यदि देश आगे भी इसी गति से बढ़ता रहा, तो यह शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करने की संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा निर्धारित समय–सीमा से लगभग पचास वर्ष पीछे चल रहा होगा। ऐसे में भारत सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को सन् 2050, सार्वभौमिक उच्च प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को सन् 2060 तथा सार्वभौमिक माध्यमिक शिक्षा के लक्ष्य को सन् 2085 तक प्राप्त कर सकेगा। विदित है कि उपरोक्त सभी लक्ष्य सस्टेनेबल डेवेल्पमेंट गोल्स 2030 के तहत आते हैं और भारत सहित विश्व के 193 देशों ने निर्धारित अवधि में इन लक्ष्यों को हासिल करने की अपनी प्रतिब्धता व्यक्त की है।

ऐसा नहीं है कि भारत स्वयं की शैक्षिक उपलब्धियों से संतुष्ट है। चाहे प्रौढ़ और आजीवन शिक्षा हो या बुनियादी, प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक और उच्च शिक्षा सरकार एवं समाज सभी स्तरों पर यहां लगातार सवाल उठाए जाते रहे हैं।

अभी हाल ही में एक स्वयंसेवी संस्थान द्वारा 'Factors of Poor Learning:Challenges, Opportunities and Practices for Learning Improvement in Socially Diverse Elementary Schools of India' विषय पर आयोजित सम्मेलन में उदघाटन भाषण प्रदान करते हुए उपराष्ट्रपति श्री एम. हमीद अंसारी ने मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा नई शिक्षा नीति विकसित करने के उददेश्य से गठित समिति के एक रिपोर्ट का हवाला देते हुए कहा कि देश में शिक्षक अनुपस्थिति का दर 25 प्रतिशत प्रतिदिन है तथा परिणाम की दृष्टि से देखा जाए तो शैक्षिक गुणवत्ता का स्तर अत्यंत ही चिन्ताजनक है। श्री अंसारी ने आगे कहा कि सरकार के पास उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार वर्तमान में देश में 6.064 मिलियन ऐसे बच्चे हैं जो विद्यालय नहीं जाते और इनमें से 76 प्रतिशत अर्थात 4.6 मिलियन बच्चे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अल्पसंख्यक समुदाय से आते हैं। उपराष्ट्रपति महोदय ने कहा कि सभी को समान अवसर उपलब्ध कराने वाली शिक्षा जिस तक सहजता से पहुंचा जा सके वह विकास के लिए राम बाण औषधि है और ऐसी शिक्षा ही भविष्य में समाज तथा उसकी राजनीति के स्वरुप का निर्धारण करेगी। एक प्रकार से उपराष्ट्रपति महोदय ने गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के अभाव में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अल्पसंख्यक समुदाय से आने वाले इन बच्चों के लिए विकास के समूचे विमर्श की निरर्थकता की ओर इशारा किया है।

दिनांक 1 सितम्बर 2016 को एनसीईआरटी के 56वें स्थापना दिवस समारोह में स्वयं मानव संसाधन विकास राज्य मंत्री श्री उपेन्द्र कुशवाहा द्वारा भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए

गए। श्री कुशवाहा ने स्वीकार किया कि पिछले कई दशकों में देशभर में अनेकों ऐसे विद्यालय खोले गए, जिनका एक शैक्षणिक संस्थान के रुप में विकसित होना अभी भी शेष है। सवाल उठता है कि सभी स्तरों पर देश की शिक्षा व्यवस्था की गुणवत्ता के बारे में इतनी स्पष्टता होने के बावजूद हम उसमें अपेक्षित सुधार क्यों नहीं ला पा रहे हैं ? एक कारण तो यह हो सकता है कि सरकार हो या समाज, दोनों ही अपनी आलोचना अथवा समालोचना के प्रति गंभीर नहीं है। अन्यथा यह क्यों है कि एक पूरी की पूरी पंचवर्षीय योजना संम्पन्न हो जाने के उपरांत भी उससे जुड़े सामान्य आंकड़ें जन सामान्य के लिए उपलब्ध नहीं हो पाते ? ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना को समाप्त हुए अब कई वर्ष हो गए हैं, लेकिन प्रौढ़ शिक्षा के मद में कुल व्यय क्या हुआ यह सामान्य जानकारी तक सहजता से उपलब्ध नहीं है। यह स्थिति तो केन्द्र से संबंधित आंकड़ों की है । यदि राज्य सरकारों से संबंधित आंकडों एवं व्यय की बात करें तो स्थिति और भी विकट हो जाती है। यह समय की मांग है कि सम्पूर्ण रुप से पारदर्शिता बरती जाए तथा साक्षर भारत कार्यक्रम जैसे राष्ट्रीय योजनाओं के दौरान हासिल तमाम उपलब्धियों यथा इस योजना पर व्यय की गई कुल राशि, इस योजना के कुल लाभार्थी, योजना के दौरान साक्षर बने कुल महिलाओं एवं पुरुषों की राज्यवार संख्या आदि को वेबपोर्टल पर उपलब्ध कराया जाए। इससे सरकार के साथ–साथ उन तमाम स्वयंसेवी संस्थानों को भी अपनी दक्षता के जमीनी आंकलन का अवसर उपलब्ध हो सकेगा, जो तत्परता के साथ विकासात्मक गतिविधियों में सक्रिय सहभाग करते हैं।

–बी संजय

भारत में प्रौढ़ शिक्षा की दिशाएं

–योगेन्द्र लाल दास

सभी के लिए शिक्षा की उपलब्धता सदियों से समस्त विश्व की चिंता एवं चिंतन का विषय रहा है। स्वभावतः भारत भी इसके प्रति सदा से न केवल संवेदनशील रहा है बल्कि इसके लिए प्रयत्न भी करता रहा है। यह एक विड़म्बना ही है कि भारत के सामाजिक एवं अकादमिक जगत में लम्बे अरसे तक यह अवधारणा बनी रही कि सभी बच्चों को शिक्षित करने से ही इस लक्ष्य की प्राप्ति संभव हो जाएगी। संभवतः बच्चों की शिक्षा की अनिवार्यता के इस अवधारणा के कारण ही भारतीय संविधान के नीति निर्देशक तत्व में शत–प्रतिशत बच्चों को शिक्षित करने के लक्ष्य को प्राप्त करने पर विशेष बल दिया गया और यह कहा गया कि स्वाधीनता के बाद के प्रथम दस वर्षो के दौरान ही सभी बच्चों को मौलिक/बुनियादी शिक्षा प्रदान कर दी जाएगी। लेकिन आनेवाले वर्षों के अनुभव से यह पता चला कि अनेक प्रयासों के बावजूद 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को इस निर्धारित समय सीमा में साक्षर/शिक्षित करना सम्भव नहीं हो पाया है। यह भी ज्ञात हुआ कि इस उम्र के जो बच्चे असाक्षर रह जाते हैं आगे चलकर उनकी गिनती प्रौढ़ असाक्षर के रूप में होने लगती है। अतएव, जबतक बच्चे एवं प्रौढ़ दोनों को समग्र रूप से साक्षर/शिक्षित करने का ठोस प्रयास नहीं होगा तब तक सर्वांगीण शिक्षा का लक्ष्य दिवा स्वप्न ही रहेगा। इसी परिप्रेक्ष्य में प्रौढ़ शिक्षा को प्राथमिकता प्रदान किया जाने लगा, इसके लिए योजनाएं बनने लगी और इस दिशा में भी तत्परता से प्रयास किया जाने लगा।

प्रौढ़ शिक्षा शब्द से ही स्पष्ट होता है कि इसका तात्पर्य वयस्क पुरूषों एवं स्त्रियों की शिक्षा से है। वस्तुतः प्रौढ़ असाक्षरों को साक्षर बनाना ही प्रौढ़ शिक्षा का मुख्य तात्पर्य है। इस शिक्षा के केन्द्र बिन्दु में वे असाक्षर हैं जो विविध कारणों से बचपन में विद्यालय नहीं जा सके और आज भी अशिक्षा की चपेट में हैं। ये सभी लोग न तो सरकार द्वारा संचालित विकासात्मक गतिविधियों का लाभ उठा पाते हैं और ना ही स्वयं से प्रयत्नशील हो स्वयं के विकास हेतु कोई कार्य योजना बना पाते हैं। स्वाभाविक ही ये वंचित और उपेक्षित रहते हुए आधुनिक समाज रचना के सबसे निचले पायदान पर रहने को विवश हैं। प्रौढ़ शिक्षा का महती उदेश्य इन सभी प्रौढ़ असाक्षरों को जीवनोपयोगी/कार्यात्मक साक्षरता प्रदान कर उन्हें उनके दैनिक जीवन में सामान्यतः उपयोग में आनेवाली पढ़ाई–लिखाई और साधारण गणित के मामले में स्वावलम्बी बनाना है ताकि वे दूसरों पर इसके लिए आश्रित नही रहें और स्वयं हीं अपने व्यावहारिक शैक्षिक/साक्षरता संबंधित कार्यों का सहजता से निष्पादन कर सकें।

वैसे तो कई प्राचीन सभ्यताओं की जन्मस्थली एवं वाहक होने के कारण इस देश ने अपने शैक्षिक धरातल पर अनेक उतार–चढ़ाव होते देखे हैं और यहां शैक्षिक चिन्तन की दिशाएं भी भिन्न–भिन्न रही हैं। पर स्वाधीनोत्तर भारत में समाज शिक्षण के तहत किए गए प्रयास कई मायनो में ज्यादा व्यापक, संगठित एवं प्रभावी रहे हैं। बावजूद इसके यह तो स्पष्ट है कि जिस परिवार के वयस्क सदस्य साक्षर/शिक्षित होते हैं वहां बच्चों को शिक्षा सहज ही उपलब्ध हो जाती है। खासकर महिलाओं के शिक्षित होने से परिवार और समाज में शिक्षा का प्रसार द्रुत गति से होता है। जिस समाज में बहुतायत वयस्क साक्षर होते हैं वहां बच्चों में शिक्षा का प्रसार तुलनात्मक रूप से अधिक होता है। तात्पर्य यह है कि प्रौढ़ व्यक्तियों के साक्षरता दर से परिवार ही नहीं बल्कि पूरा समाज प्रभावित होता है क्योंकि यह वर्ग उत्पादन और प्रजनन तथा पुनरूत्पादन दोनो दृष्टि से अधिक सक्रिय होता है और परिवार तथा समाज का सर्वाधिक उत्तरदायित्व इन्हीं पर होता है। प्रौढ़ शिक्षा वस्तुतः इसी वर्ग के शैक्षिक हितों को पूरा करने का सुनियोजित माध्यम है जिससे सम्पूर्ण देश के शैक्षिक स्तर में सकारात्मक परिवर्तन होता है। इसलिए प्रौढ़ शिक्षा की दशा और दिशा का सम्यक विवेचन आवश्यक है।

प्रौढ़ शिक्षा की दिशाएं :

भारतवर्ष में प्रौढ़ शिक्षा की शुरूआत स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ही हो चुकी थी लेकिन तब इसकी व्याप अत्यंत ही सीमित थी और इसमें निरंतरता का अभाव था। पर स्वतंत्र भारत में इस दिशा में हो रहे प्रयासों की निरंतरता अब तक बनी हुई है। कभी यह 'ईच–वन, टीच–वन' के नाम से तो कभी 'सामाजिक शिक्षा', 'ग्राम शिक्षा मुहिम' और कभी कृषकों के लिए 'कार्यात्मक साक्षरता' के नाम से चलता रहा। परन्तु एक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम के रूप में इसे राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के नाम से 2 अक्टूबर 1978 को सम्पूर्ण भारत में लागू किया गया। यह कार्यक्रम मूलतः केन्द्र आधरित था जिसमें एक प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र में 30 वयस्क असाक्षरों को एक मानदेय आधरित अनुदेशक द्वारा साक्षर बनाने की योजना थी। इसके तहत 15 से 35 आयु वर्ग के असाक्षरों को साक्षर कर एक निर्धारित समय सीमा के भीतर देश में निरक्षरता उन्मूलन के लक्ष्य को हासिल करना था।

परन्तु राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के समीक्षा से यह ज्ञात हुआ कि इस कार्यक्रम की उपलब्धि और निर्धारित लक्ष्य के बीच एक बड़ा अन्तराल है तथा इसके क्रियान्वयन में लोक भागीदारी का अभाव रहा है। इतना ही नहीं कतिपय प्रक्रियात्मक एवं वित्तीय जटिलताओं के कारण भी इस इस कार्यक्रम के सुचारु संचालन में अनेक अडंचनें आईं जिससे इसकी उपलब्धि प्रभावित हुई। इन अडचनों से बचने तथा कालक्रम में बेहतर उपलब्धि हासिल करने की दृष्टि से आगामी दिनों में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों में कई प्रविर्तनों का समावेश किया गया जिससे प्रौढ़ शिक्षा की दिशा में बदलाव आया। इसी पृष्ठभूमि में सन् 1988 में राष्ट्रीय साक्षरता

मिशन की स्थापना हुई। इस नवीन कार्यक्रम की संरचना, रणनीति, गतिविधियों एवं उनके क्रियान्वन में आमूल परिवर्तन किया गया। प्रौढ़ शिक्षा की इस नई राष्ट्रीय पहल को एक समयबद्ध अभियान के रूप में संचालित किया गया जिसमें एक स्वयंसेवी शिक्षक द्वारा 10 असाक्षरों को बुनियादी साक्षरता प्रदान करने की व्यवस्था की गई थी। रणनीति के तौर पर राष्ट्रीय साक्षरता अभियान के अन्तर्गत सर्वप्रथम सम्पूर्ण साक्षरता अभियान संचालित किया गया। इसके पश्चात उत्तर साक्षरता कार्यक्रम और तत्पश्चात सतत शिक्षा कार्यक्रम संचालित कर लक्ष्य समूह को न केवल साक्षर/शिक्षित बनाने की कोशिश की गई बल्कि उन सभी के लिए व्यावसायिक कौशल प्रदान करने की पहल भी की गई ताकि नवसाक्षर अपने व्यक्तिगत रूचि के अनुरूप ज्ञान और कौशल अर्जित कर जीवन की गुणवत्ता में अपेक्षित सुधार कर सकें।

सन् 1988 से 2008 तक राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के नेतृत्व एवं मार्गदर्शन में देश के 597 जिलों में सम्पूर्ण साक्षरता अभियान, 485 जिलों में उत्तर साक्षरता कार्यक्रम तथा 328 जिलों में सतत् शिक्षा कार्यक्रम लागू किया गया। उक्त समयावधि में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के आकलन के अनुसार कुल मिलाकर लगभग 13 करोड़ असाक्षर वयस्क साक्षर बनाए गए। किन्तु 20 सालों के लम्बे अन्तराल में हासिल हुई यह उपलब्धि लक्ष्य की तुलना में पर्याप्त नही थी। इस संदर्भ में हुए अध्ययनों एवं अलग–अलग स्तरों पर हुए समीक्षाओं से यह इंगित होता प्रतीत हुआ कि साक्षरता अभियान स्वयंसेवी प्रयासों पर आधरित अभियानजनित सीमाओं में बंधे रहने, व्यापक लोक भागीदारी सुनिश्चित नहीं हो पाने, लक्ष्य समूहों एवं हितभागियों में पर्याप्त उत्प्रेरणा का अभाव होने, विभिन्न स्तरों पर मजबूत प्रबंधकीय संरचना का अभाव होने तथा सहयोगात्मक अनुश्रवण एवं पर्यवेक्षण की कमी होने, के कारण यह अभियान वांछित लक्ष्य हासिल करने में सफल नहीं हो सका।

यद्यपि, वर्ष 2001–02 में इस अभियान के तहत एक अभिनव प्रयास के द्वारा देश के 4 राज्यों, यथा बिहार, झारखण्ड, ओड़िसा एवं उत्तर प्रदेश में विशेष त्वरित महिला साक्षरता कार्यक्रम का संचालन किया गया तथा साक्षरता केन्द्रों के द्वारा कार्यात्मक साक्षरता प्रदान करने के अतिरिक्त विशेष लक्ष्य समूह, खासकर असाक्षर महिला पंचायत प्रतिनिधियों के लिए अल्पावधि साक्षरता शिविरों के माध्यम से साक्षरता प्रदान करने की रणनीति अपनाई गई। सम्पूर्ण साक्षरता अभियान की तुलना में इस प्रयोग का परिणाम खासकर उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे प्रदेशो में अत्यंत बेहतर रहा। शिविर आधारित यह प्रयोग साक्षरता प्रतिभागियों को साक्षर बनाने के साथ–साथ उन्हें शिक्षा–साक्षरता के प्रति संवेदनशील बनाने में भी कारगर सिद्ध हुआ। साथ ही साथ बिहार में स्वयंसेविकाओं को स्वयं सहायता समूह विषय पर प्रशिक्षण प्रदान कर समूह गठन की दिशा में विशेष पहल की गई। इस कार्य को गति प्रदान करने के लिए केन्द्र, राज्य एवं जिला स्तर पर ग्रामीण विकास विभाग के साथ समन्वय भी

स्थापित किया गया। परन्तु यह प्रयास भी कहीं न कहीं रूक सा गया और इसके राह में भी कई प्रकार की बाधाएं उत्पन्न होने लगीं। समूह गठन में लगे महिलाओं को साक्षरता कर्मियों, जिला साक्षरता समीतियों और संबंधित पदाधिकारियों का समुचित समर्थन एवं सहयोग सुनिश्चित नहीं हो सका। इस नवाचारी प्रयास ने यद्यपि साक्षर समाज के निर्माण में बेहतर भूमिका अदा की पर इसमें भी निरंतरता का अभाव रहा। कुल मिलाकर आगे आनेवाले वर्षों में अभियान की गति की तीव्रता में भी क्रमशः कमी महसूस होने लगी। फलतः पुनः इस कार्यक्रम के स्वरूप में परिवर्तन लाने की दिशा में चिन्तन प्रारम्भ हुआ। अन्ततः सितम्बर 2009 को साक्षर भारत कार्यक्रम के नाम से इसका परिवर्तित स्वरूप सामने आया। उक्त कार्यक्रम की जो प्रस्तावित प्रारूप तय की गई उसमें बुनियादी साक्षरता, बुनियादी शिक्षा, सतत् शिक्षा एवं कौशल विकास प्रशिक्षण को एक साथ लागू करने की अवधारणा बनी। इसमें 15 वर्ष और उसके उपर के सभी व्यक्तियों को लक्ष्य समूह के रूप में रेखांकित किया गया। साक्षर भारत कार्यक्रम मूलतः महिला साक्षरता के कार्यक्रम के रूप में सामने आया और इसके तहत निर्धारित 70 मिलियन लक्ष्य समूह में 60 मिलियन महिलाओं को साक्षर करने का लक्ष्य रखा गया। जातिवर्गवार विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अल्पसंख्यकों को लक्ष्य समूह में विशेष प्राथमिकता प्रदान की गई है।

साक्षर भारत कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए जिलों से लेकर पंचायतों तक लोक शिक्षा समितियों का गठन किया गया। प्रत्येक पंचायत में 1 लोक शिक्षा केन्द्र, प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र के रूप में स्थापित किया गया जिसमें 2 प्रेरकों की नियुक्ति की गई ताकि वे केन्द्र की विविध गतिविधियों के संचालन के साथ–साथ समुदाय आधरित शिक्षा–साक्षरता संबंधित विविध गतिविधियों का अनुश्रवण कर सकें तथा उसका लेखा–जोखा रख सकें। साक्षर भारत के क्रियान्वयन में राज्य साक्षरता मिशन पर प्रशासनिक भूमिका के अतिरिक्त अकादमिक भूमिका के निर्वहन की भी जिम्मेवारी सौंपी गई। शिक्षण प्रशिक्षण सामग्री निर्माण तथा प्रशिक्षण के संचालन में उन्हें अग्रणी भूमिका दी गई। इसके विपरीत इन अकादमिक कार्यों में राज्य संसाधन केन्द्रों की भूमिका पूर्व की तुलना में कम कर दी गई। इस प्रकार प्रमुख संस्थानों की भूमिका में परिवर्तन किया गया। साथ हीं साथ शोध एवं मूल्यांकन तथा परियोजना/कार्ययोजना निर्माण में राज्य संसाधन केन्द्रों की जो भूमिका थी उसमें भी कमी आई क्योंकि पूर्व की तरह इसकी अपरिहार्यता एवं प्राथमिकता नहीं रही। राज्य संसाधन केन्द्रों को इन कार्यों के बजाय अपने कार्य क्षेत्र के अधीन एक सीमित क्षेत्र की पहचान कर उसे साक्षर भारत के सफलता के द्वीप के रूप में प्रयोगस्थली मानकर प्रारंभ से अंत तक सभी गतिविधियों के क्रियान्वयन में फैसिलिटेटर के रूप में कार्य करने की जिम्मेवारी सौंपी गई। फलतः पूर्व की भांति वे अपने समग्र कार्यक्षेत्र के लिए आवश्यक अकादमिक सहयोग जारी नहीं रख सके।

साक्षर भारत कार्यक्रम के तहत कुल मिलाकर अब तक देश के 25 राज्यों एवं 1 केन्द्र शासित प्रदेश से चयनित 372 जिलों को सम्मिलित किया गया है। प्रत्येक राज्य साक्षरता

मिशन एवं राज्य संसाधन केन्द्र को यह जिम्मेवारी दी गई है कि वे इनमें से कुछ लोक शिक्षा केन्द्रों को उत्कृष्ट/मॉडल लोक शिक्षा केन्द्र के रूप में विकसित करें। वर्ष 2013 तक लगभग 1.5 लाख लोक शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की जा चुकी थी। अब लगभग 16 लाख स्वयंसेवकों और प्रेरकों के माध्यम से 2 करोड़ के करीब असाक्षरों को साक्षर बनाने का प्रयास लगातार किया जा रहा है।

वर्ष 1978 से अबतक दशकीय जनगणना के दौरान साक्षरता दरों में हुई बढ़ोतरी में प्रौढ़ शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वर्ष 1981 में देश की साक्षरता दर 43.57 प्रतिशत थी जो सन् 1991, 2001 और 2011 में बढ़कर क्रमशः 52.21, 64.84 और 73.00 प्रतिशत हो गई है, फिर भी देश की जनसंख्या का एक चौथाई भाग असाक्षर रह गया है जो आज के परिप्रेक्ष्य में चिंता का विषय है।

उपर्युक्त तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि निर्धारित समय–सीमा में साक्षर भारत कार्यक्रम का लक्ष्य भी हासिल नही हो सका है। इस विफलता के पीछे कई कारण हैं। साक्षर भारत कार्यक्रम की पूर्व तैयारी में लगभग 2–3 वर्षों का समय लग गया। कार्यक्रम के प्रारम्भ होने के बाद भी इसके स्वरूप के अनुरूप बहुआयामी क्रियाकलापों को धरातल पर नहीं उतारा जा सका क्योंकि इसके क्रियान्वयन के मार्ग में भी कतिपय प्रक्रियात्मक, वित्तीय एवं अन्य बाधाएं सामने आईं।

फलतः साक्षर भारत कार्यक्रम को गति देने के लिए नवाचारों की जरूरत महसूस हुई। इसी परिप्रेक्ष्य में हाल के वर्षों में इन्टर पर्सनल मीडिया कैम्पेन संचालित किया गया। इसके तहत देश के 1 लाख ग्राम पंचायतो को पूर्ण साक्षर बनाने का लक्ष्य रखा गया। कार्यक्रम को पुनर्जीवित और गतिशील बनाने के लिए साक्षरता संबंधित शिक्षण–प्रशिक्षण विषय–वस्तुओं में तथा वातावरण निर्माण की गतिविधियों में कतिपय् समसामयिक विषयों, यथा–चुनावी साक्षरता, कानूनी साक्षरता, वित्तीय साक्षरता तथा आपदा प्रबंधन एवं नागरिक सुरक्षा का समावेश करने की रणनीति बनाई गई और तदनुरूप प्रयास भी किए गए। इन प्रयासों को मजबूती प्रदान करने के लिए संबंधित विभागों यथा चुनाव आयोग, आपदा प्रबंधन, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया आदि के साथ समन्वय (कनवर्जेन्स) स्थापित किया गया।

संसदीय चुनाव के उपरान्त आदर्श सांसद ग्राम योजना के तहत चयनित गांवों को साक्षर बनाने के प्रति भी साक्षर भारत कार्यक्रम के तहत सचेष्टता दिखायी गयी तथा इस हेतु उपयुक्त पहल भी की गई। इसके अतिरिक्त नेशनल मिशन फॉर ग्रीन गंगा के तहत स्वच्छ गंगा पर्यावरणीय साक्षरता के संदर्भ में भी कई कार्यक्रमों की योजनाएं बनी हैं। इस प्रकार समय–समय पर कार्यक्रम के स्वरूप में और क्रियान्वयन में परिवर्तन होता रहा है। संबंधित राज्य संसाधन केन्द्र अपने–अपने कार्यक्षेत्रों में इन योजनाओं को गति प्रदान करने हेतु

सम्यक अकादमिक पहल कर रही हैं। शिक्षण–प्रशिक्षण एवं उत्प्रेरण के सामग्री निर्माण, वातावरण निर्माण, प्रशिक्षण उन्मुखीकरण तथा साक्षरता की गतिविधियां संचालित करने में राज्य संसाधन केन्द्रों को महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गई है।

निष्कर्ष:

उपरोक्त तथ्य यह इंगित करते हैं कि प्रौढ़ शिक्षा की दिशाएं विविधतापूर्ण रही हैं। समय–समय पर कार्यक्रम में नये आयाम जुड़ते रहे हैं। क्रियान्वयन की रणनीति में भी परिवर्तन होता रहा है, परन्तु सच यह है कि नीतिगत स्वरूप के अनुरूप कार्यान्वयन सुनिश्चित नहीं हो सका है। परिणामस्वरुप प्रौढ़ शिक्षा के लक्ष्य और उपलब्धि के बीच हमेशा अन्तराल कायम रहा है। अर्थात् दिशाएं बदलती रही हैं, किन्तु दशा में व्यापक बदलाव दृष्टिगोचर नहीं होता है। उत्तरोत्तर, प्रौढ़ शिक्षा के परिवर्तित कार्यक्रमों को लागू करते समय पूर्ववर्ती कार्यक्रमों की खूबियों को ग्रहण करने और कमियों को दूर करने की प्रभावी रणनीति पर सम्यक विचार का सम्भवतः थोड़ा अभाव रहा है।

यद्यपि साक्षर भारत कार्यक्रम के तहत उपर्युक्त वर्णित कतिपय नये कार्यक्रमों को शुरू करना और संबंधित विभागों के साथ कनवर्जेन्स स्थापित करना सराहनीय कदम रहा है। परन्तु इसे ठोस आधर प्रदान करने हेतु लगातार सम्मिलित प्रयास और पहल करने तथा तदनुरूप आगामी कार्ययोजना बनाने एवं तत्परता से क्रियान्वित करने की आवश्यकता सदा महसूस होती रही है।

सर्वाधिक आवश्यकता इस बात की है कि जबतक एक भी असाक्षर देश में है, सर्वोच्च प्राथमिकता निरक्षरता उन्मूलन कार्यक्रम को ही दी जाए। प्रौढ़ शिक्षा की केवल महत्वकांक्षी योजना बनाने के बजाय, व्यावहारिक योजनाएं बनायी जाएं जो विशिष्ट हों, मापनीय हों, हासिल करने योग्य हों, वास्तविक हों और समयबद्ध हों। साथ ही इसके लिए पर्याप्त मानव संसाधन एवं वित्तीय संसाधन की उपलब्धता भी सुनिश्चित हो। लक्ष्य निर्धारण एवं क्रियान्वयन की रणनीति पूर्णतः विकेंद्रित एवं सूक्ष्म स्तरीय योजना पर आधरित हो। शिविर आधारित साक्षरता का अनुभव चूंकि अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी साबित हुआ है, अतएव इन प्रयोगों को प्रश्रय देने की जरूरत है। साथ ही अनुदेशक आधारित केन्द्र के माध्यम से साक्षरता के प्रयासों को गति देने पर भी बल देने की जरूरत है। साक्षर भारत कार्यक्रम के प्रभाव आकलन हेतु समवर्ती मूल्यांकन, बाह्य मूल्यांकन एवं प्रभाव अध्ययन भी करना अपेक्षित है।

आवश्यकता इस बात की है कि दिशा बदलने के बजाय, दशा बदलने का दृष्टिकोण अपना कर प्रौढ़ शिक्षा को तदर्थ/अस्थायी/अल्पकालीन योजना के रूप में संचालित करने के बजाय स्थायी कार्यक्रम का स्वरूप दिया जाए। इसके लिए नये सिरे से स्थानीय सर्वेक्षण

के आधार पर आवश्यकता का आकलन करना होगा, पर्याप्त पूर्व तैयारी करनी होगी, सुस्पष्ट रणनीति बनानी होगी और तदनुरूप गतिविधियां संचालित करनी होगी। केन्द्र से लेकर राज्य एवं जिलों के त्रिस्तरीय प्रबंधकीय संरचना को मजबूत करना होगा। अकादमिक सहयोग प्रदान करने वाली संस्था, यथा राज्य संसाधन केन्द्र को परिवर्तित परिवेश/परिस्थिति एवं नई चुनौतियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप सशक्त बनाना होगा। इसके लिए इस बात पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है कि पूर्व अनुभवी योग्य एवं समर्पित कर्मियो को अकादमिक क्रियाकलापों से जोड़ा जाए तथा उनकी सहभागिता के माध्यम से कार्यक्रमों की गुणवत्ता बरकरार रखी जाय। जिला स्तर पर भी पूर्व अनुभवी, योग्य एवं कर्मठ साक्षरता कर्मियों को कार्यक्रम से जोड़े रखने की कोशिश करनी होगी।

यदि उपर्युक्त तथ्यों एवं सुझावों को ध्यान में रखकर प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम की नीतिगत स्वरूप एवं क्रियान्वयन की दिशा तय की जाय तो अपेक्षित लक्ष्य को हासिल करना सम्भव हो सकेगा।

"हम अपने देश को धर्मनिरपेक्ष (सेक्युलर) देश कहते हैं। "धर्मनिरपेक्ष" शब्द बहुत अच्छा नहीं है। लेकिन बेहतर शब्द के अभाव में हमने इसका प्रयोग किया है। इसका सही अर्थ क्या है? स्पष्ट ही इसका अर्थ ऐसा देश नहीं जहां धर्म पालन को हतोत्साहित किया जाय। इसका अर्थ है धर्म और विवेक की स्वतंत्रता, उनके लिए भी जिनका कोई धर्म न हो, शर्त यही है कि वे एक–दूसरे के जीवन में या हमारे देश की मूलभूत अवधाराणाओं में हस्तक्षेप न करें। लेकिन मेरे लिए धर्मनिरपेक्ष शब्द के कुछ और भी मायने हैं, हालांकि हो सकता है कि शब्दकोष में यह अर्थ न दिया गया हो। यह सामाजिक और राजनैतिक समानता का विचार अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार, जातिप्रथा में जकड़ा हुआ समाज समुचित अर्थ में धर्मनिरपेक्ष नहीं है। किन्हीं व्यक्तियों की आस्था से छेड़छाड़ की मेरी कोई इच्छा नहीं है लेकिन जब ये आस्थाएं जातिगत विभाजनों में जड़वत जो जाती हैं, तब, निःसन्देह यह हमारे देश के सामाजिक ढ़ांचे पर बुरा असर डालती हैं। इससे समानता के विचार को वह यथार्थ रूप नहीं मिल पाता जिसे हम अपनाने का दावा करते हैं।"

– पंडित जवाहरलाल नेहरू

माध्यमिक स्तर पर शासकीय शहरी एवं ग्रामीण विद्यालयों के विद्यार्थियों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन

— रमा शंकर

'उसके साथ सौम्य व्यवहार तो करें किन्तु उसे गले न लगाएं क्योंकि केवल अग्नि परीक्षा से ही उत्तम फौलाद निर्मित होता है। उसमें अधर्म होने का साधन विकसित न होने दें और साहसी बनने का धैर्य भी प्रदान करें। उसे मानव जाति में परम विश्वास रखने की शिक्षा दें।

यह बहुत बड़ी अपेक्षा है परन्तु सोचें कि आप इसके लिए क्या कर सकतें हैं। वह ऐसा प्यारा बच्चा है, मेरा पुत्र।''

— अब्राहम लिंकन

उपरोक्त कलेवर अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन द्वारा अपने पुत्र के शिक्षक को लिखे गए पत्र का है। पत्र से स्पष्ट होता है कि शिक्षा मूलतः संस्कार एवं सोच निर्माण की प्रक्रिया है, जिससे ज्ञान के नए क्षितिज उभरते हैं, मानवीय दक्षताओं का विकास होता है, नए संकल्प पनपते हैं तथा जीवन को पूर्णता की ओर ले जाने के बहुआयामी चेष्ठाओं एवं मूल्यों को गति मिलती है।

इस प्रकार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य ऐसे मानवीय गुणों का विकास करना है जो व्यक्ति तथा समाज की बौद्धिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक सामर्थ्य को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो सकें जैसे व्यक्ति के ज्ञान एवं कौशल के स्तर में अभिवृद्धि करना, व्यक्ति को अपनी सम्यक पूर्णता की प्राप्ति हेतु सचेष्ट करना, समग्र व्यक्तित्व को विकसित करना तथा समाज में परस्पर सौहार्द्र, भाई–चारा एवं एक दूसरे के प्रति आदर – भावना उत्पन्न करना जिससे एक ऐसे समाज के निर्माण की कल्पना साकार हो सके जिसमें जाति, पन्थवाद, आर्थिक विषमता, क्षेत्रीयता एवं भाषा आदि के आधार पर पाई जाने वाली संकीर्ण प्रवृत्तियों के स्थान पर बुनियादी मानवीय गुणों यथा ''वही मनुष्य है जो मनुष्य के लिए मरे'' को बढ़ावा मिले।

समस्या कथन

''माध्यमिक स्तर पर शासकीय तथा अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक समायोजन क्षमता का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन''

शोध अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध अध्ययन निम्नलिखित उद्दश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रस्तावित है :

1. माध्यमिक स्तर पर शासकीय शहरी एवं ग्रामीण विद्यालयों के विद्यार्थियों की समायोजन क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर पर अशासकीय शहरी एवं ग्रामीण विद्यालयों के विद्यार्थियों की समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाएं

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्ता ने सांख्यिकी परिकल्पना के रूप में शून्य परिकल्पना का चयन किया है। इस अध्ययन के तहत निम्नलिखित परिकल्पनाएं चुनी गई हैं जिनकी पुष्टि की जानी है :

1. शहरी एवं ग्रामीण शासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की समायोजन क्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. शहरी एवं ग्रामीण अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की समायोजन क्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

न्यायदर्श चयन

इस शोध अध्ययन में स्तरीकृत यादृच्छिक न्यायदर्शन का प्रयोग करते हुए माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित वाराणसी जनपद के 10 शासकीय विद्यालयों को लिया गया है, जिनमें से 5 शहरी एवं 5 ग्रामीण विद्यालय हैं। शोध हेतु अनुंसधान कार्य के लिए चिन्हित विद्यालयों में से कक्षा 9 एवं 11 में अध्ययनरत 200 विद्यार्थियों का चयन किया गया।

क्र. सं.	विद्यालय का स्वरूप	विद्यालयों की संख्या	कक्षा–9 के विद्यार्थी	कक्षा 11 के विद्यार्थी	योग
1	शहरी शासकीय विद्यालय	5	50	50	100
2	ग्रामीण शासकीय विद्यालय	5	50	50	100
	योग	10	100	100	200

शोध उपकरण

शोधकर्ता ने अध्ययन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विश्वसनीयता, वैधता, वस्तुनिष्ठता तथा व्यापकता को ध्यान में रखकर प्रदत्तों के संकलन हेतु निम्न उपकरण का प्रयोग किया।

1. समायोजन मापन के लिए प्रो. आर. पी. सिंह और ए. के. पी. सिन्हा द्वारा निर्मित समायोजन मापनी।
2. शैक्षिक उपलब्धि के रूप में छात्रों के वार्षिक प्राप्तांक का प्रयोग।

प्रदत्तों का संकलन

प्रस्तुत शोध अध्ययन के उद्देश्यों, न्यादर्श, एवं उपकरणों की प्रकृति को देखते हुए प्रदत्तों के संकलन का कार्य व्यवस्थित ढंग से पूर्ण हो सके इसके लिए सर्वप्रथम एक कार्य योजना तैयार की गई तथा उस योजना के अनुसार ही शोधकर्ता ने चयनित प्रत्येक विद्यालय में जाकर प्रधानाध्यापक से अनुमति लेकर परीक्षण प्रशासित किए। परीक्षण प्रशासन के उपरान्त प्रत्येक उपकरणों के प्राप्ताकों का सम्पादन तथा सारणीयन करने के पश्चात उपयुक्त सांख्यिकी विधियों का प्रयोग करके शोध परिणाम प्राप्त किये गए।

प्रदत्तों का विश्लेषण

प्रदत्तों की उपादेयता उनके समीचिन विश्लेषण में निहित है। विश्लेषण का मुख्य उद्देश्य प्रदत्तों से नवीन तथ्यों को प्राप्त करना है जिसमें सांख्यिकीय प्राविधियों का विशेष महत्व होता है। सांख्यिकीय गणनाएं शोध अध्ययन का आधार होती हैं। प्रस्तुत अध्ययन में प्रदत्तों के सांख्यिकीय विश्लेषण के अन्तरगत ''प्रतिशत के रूप में आकृति वितरण गणना'' मध्यमान एवं मानक विचलन तथा मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता टी (t-test) परीक्षण द्वारा ज्ञात किया गया है। सांख्यिकीय विश्लेषण एवं इससे प्राप्त परिणामों की व्याख्या उद्देश्यनुसार किया गया है।

उद्देश्य– 1.माध्यमिक स्तर पर शासकीय शहरी एवं ग्रामीण विद्यालयों के विद्यार्थियों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन

शहरी एवं ग्रामीण शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों के समायोजन के अध्ययन हेतु दोनों प्रकार के विद्यालयों में सिन्हा एवं सिंह की समायोजन मापनी का प्रयोग किया गया। इस जानकारी से प्राप्त आकड़ों का वर्गीकरण करके आवृत्ति वितरण तालिका का निर्माण किया गया और उनका प्रतिशत ज्ञात किया गया। निम्नलिखित सारणी में प्रदत

आकड़ों से शहरी एवं ग्रामीण विद्यालयों के विद्यार्थियों के समायोजन के अन्तर को देखा जा सकता है।

माध्यमिक विद्यालय	छात्रों की संख्या	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D)	मध्ममानों के अन्तर की मानक त्रुटि	टी अनुपात	सार्थकता स्तर
शहरी शासकीय	50	11.2	3.39	.60	5.17	0.01स्तर पर सार्थक
ग्रामीण शासकीय	50	8.1	2.56			

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि शहरी शासकीय विद्यालयों के छात्रों के समायोजन के प्राप्तांकों का मध्यमान 11.2 तथा मानक विचलन 3.39 है जबकि ग्रामीण शासकीय विद्यालयों के छात्रों की समायोजन सम्बन्धी स्थिति के प्राप्तांकों का मध्यमान 8.1 तथा मानक विचलन 2.56 है। साथ ही यह भी है कि दोनों प्रकार के विद्यालयों के छात्रों की समायोजन सम्बन्धी स्थिति के प्राप्तांकों के मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता परीक्षण हेतु परिगणित टी अनुपात 5.17 है जो मुक्तांश (98) के लिए 0.01 स्तर पर सारणीमान 2.63 से बहुत अधिक है। प्राप्त मध्यमानों की तुलनात्मक स्थिति निम्नलिखित स्तम्भाकृति से स्पष्ट होता है –

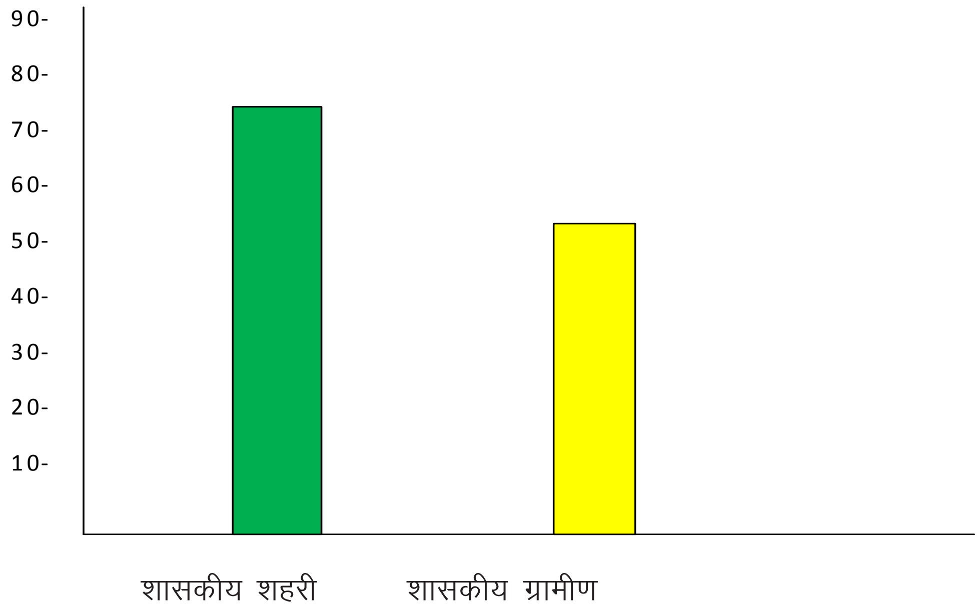

शासकीय शहरी एवं शासकीय ग्रामीण छात्रों की समायोजन क्षमता को व्यक्त करता स्तम्भाकृति चित्र

उपरोक्त स्तम्भाकृति के अवलोकन के उपरान्त यह बात स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है कि शहरी शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र शासकीय ग्रामीण विद्यालयों में

अध्ययनरत छात्रों की अपेक्षा अधिक समायोजित दिखे जिसके पीछे निहित कारणों में शहरी शासकीय विद्यालयों की अनुशासन, अध्यापकों की ईमानदारी या जांच के भय से किया गया अध्यापन कार्य तथा जांच एजेन्सियों की अधिक सक्रियता आदि शामिल हैं। इन कारणों के परिणामस्वरुप छात्र अधिक दिन विद्यालय आए तथा कक्षा में रूककर अध्ययन किया जिसके कारण वे अधिक समायोजित दिखे। इसके ठीक विपरीत ग्रामीण विद्यालयों में कम अनुशासन, अध्यापकों एवं जांच एजेन्सियों की उपेक्षा तथा माता–पिता द्वारा बच्चों पर पूर्ण ध्यान न देने के कारण उन विद्यालयों के बच्चे शहरी विद्यालयों की अपेक्षा कम समायोजित दिखे।

उद्देश्य–2 माध्यमिक स्तर पर शहरी एवं ग्रामीण शासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन

चयनित दोनों प्रकार के विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करने के लिए शोधकर्ता ने शहरी एवं ग्रामीण शासकीय विद्यालयों के न्यादर्श में चयनित छात्रों से पिछली कक्षा के शैक्षणिक उपलब्धि प्रपत्रों को लेकर संबंधित आँकड़े एकत्रित किए। प्राप्त आँकड़ों को वर्गीकृत एवं सारणीबद्ध करने के पश्चात मध्यमान और मानक विचलन ज्ञात करके प्राप्तांकों के मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता टी–टेस्ट द्वारा ज्ञात की गयी जिसे सांख्यकीय आँकड़ों के आधार पर निम्नलिखित रुप में दर्शाया जा सकता है –

माध्यमिक विद्यालय	छात्रों की संख्या	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D)	मध्ममानों के अन्तर की मानक त्रुटि	टी अनुपात	सार्थकता स्तर
शहरी शासकीय	50	15.24	1.54	.29	16.14	0.01स्तर पर सार्थक
ग्रामीण शासकीय	50	10.36	1.38			

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि शहरी शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि सम्बन्धी स्थिति का प्राप्तांकों का मध्यमान 15.04 तथा मानक विचलन 1.54 है जबकि ग्रामीण शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि सम्बन्धी स्थिति का प्राप्तांकों का मध्यमान 10.36 तथा मानक विचलन 1.38 है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि दोनों प्रकार के विद्यालयों के छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि सम्बन्धी स्थिति के प्राप्तांकों के मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता परीक्षण हेतु परिगणित टी अनुपात 16.64 है जो मुक्तांश (98) के लिए 0.01 स्तर पर सारणीयन 2.63 से पर्याप्त अधिक है। प्राप्त माध्यमानों की तुलनात्मक स्थिति अगली स्तम्भाकृति से स्पष्ट है ।

शासकीय शहरी एवं ग्रामीण विद्यालयों के विद्यार्थियों की उपलब्धि का स्तम्भ चार्ट

उपरोक्त स्तम्भाकृति के अवलोकन से ज्ञात हाता है कि शहरी शासकीय विद्यालयों में

अध्ययनरत छात्र ग्रामीण शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों की अपेक्षा अधिक शैक्षणिक उपलब्धि हासिल कर सके हैं।

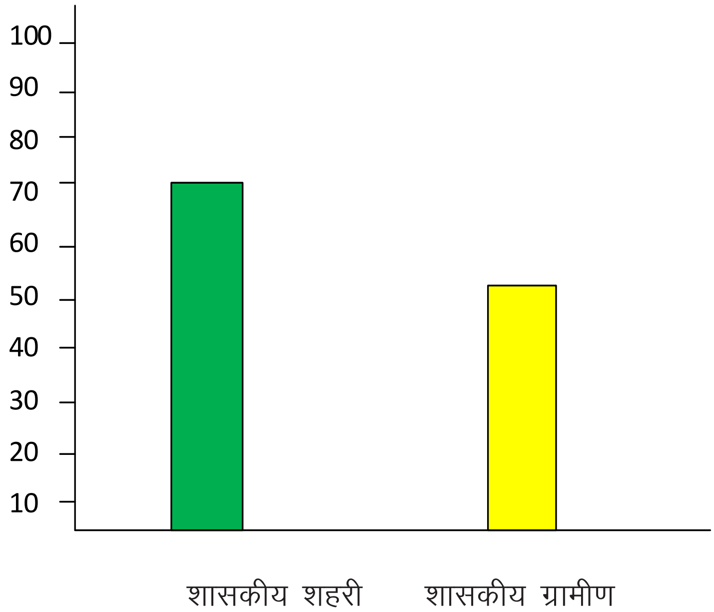

इसके पीछे निहित कारणों में शहरी विद्यालयों में मानवीय एवं भौतिक संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता, उचित एवं कठोर अनुशासन, अध्यापकों के कार्य की छात्रों के प्रति जवाबदेही, विद्यालय जांच दलों का अध्यापकों पर पूर्ण नियंत्रण, प्रयोगशाला एवं पुस्तकालयों की उचित व्यवस्था तथा इसके साथ ही छात्रों का उच्च आर्थिक परिवार से सम्बन्धित होना है जिसके कारण छात्र मानसिक रूप से स्वतंत्र होकर अध्ययन करते हैं। परिणामस्वरूप शहरी शासकीय विद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि उच्च होती है। दूसरी तरफ ग्रामीण शासकीय क्षेत्र के विद्यालय में अध्ययन करने वाले छात्र मध्यम या निम्न आर्थिक पृष्ठभूमि से सम्बन्धित होते हैं। इतना ही नहीं ग्रामीण क्षेत्र में स्थित शासकीय विद्यालयों में पर्याप्त मानवीय एवं भौतिक सुविधाओं का अभाव, अध्यापकों का अपना कार्य उत्तरदायित्व पूर्ण ढ़ंग से न करना तथा विद्यालयों में अनुशासन की उचित व्यवस्था न होने आदि के कारण से छात्र मनोयोग से नहीं पढ़ पाते। इन सभी कारणों के परिणामस्वरूप ग्रामीण शासकीय विद्यालय के छात्रों का शैक्षिक स्तर शहरी शासकीय विद्यालय के छात्रों की अपेक्षा कम होती है।

शैक्षिक निहितार्थ

अध्ययन हेतु चयनित छात्रों की समायोजन क्षमता में ग्रामीण एवं शहरी पृष्ठभूमि के आधार पर बहुत अधिक अन्तर विद्यमान है। जहां शहरी क्षेत्र के शासकीय एवं अशासकीय दोनों प्रकार के विद्यालयों से आने वाले छात्रों का समायोजन स्तर अधिक पाया गया वहीं

ग्रामीण क्षेत्र के शासकीय एवं अशासकीय दोनों प्रकार के विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों का समायोजन स्तर अपेक्षाकृत कम पाया गया। इतना ही नहीं शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के छात्रों के जीवन मूल्यों तथा उनके अभिभावकों के सामाजिक और आर्थिक स्तर में भी पर्याप्त अन्तर पाया गया।

प्रस्तुत अध्ययन में पाया गया कि ग्रामीण विद्यालयों में पढ़ने वाले अधिकांश बच्चों के अभिभावक अशिक्षित अथवा कम पढ़े–लिखे हैं तथा उनके आय के साधन मजदूरी, खेती अथवा अल्प आय वाली नौकरियों तक ही सीमित है। यहां के परिवारों में सदस्यों की औसत संख्या भी शहरी क्षेत्रों के परिवारों की तुलना में अधिक है। शहरी विद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रों के अभिभावक उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर वाले पाए गए। ध्यान देने योग्य बात यह है कि शहरी क्षेत्रों के शासकीय विद्यालयों में उच्च वर्गों के बच्चों की संख्या नगण्य है। यहां पढ़ने वाले अधिकांश बच्चे अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों, मुस्लिम वर्गों तथा आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों से आते हैं जिनकी आर्थिक स्थिति दयनीय होती है। इनमें भी अधिकांश अभिभावक अपने बच्चों को छात्रवृत्ति अथवा राशन के लिए ही भेजते हैं। ये अभिभावक अपने बच्चों से नियमितरुप से घरेलू कार्य कराते हैं। जहां शासकीय विद्यालयों के अभिभावक अपनी आय के नाम मात्र भाग ही अपने बच्चों की शिक्षा पर खर्च करते हैं वहीं अशासकीय विद्यालयों में पढ़ने वाले बच्चों के अभिभावक शिक्षित तथा उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर के हैं तथा बच्चों की शिक्षा के प्रति अत्यन्त जागरूक हैं और अपने पाल्यों की शिक्षा पर अपने मासिक आय का एक बड़ा भाग खर्च करते हैं।

आकड़ों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि शहरी शासकीय विद्यालयों तथा ग्रामीण शासकीय विद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक निष्पत्ति में सार्थक अन्तर है। शहरी शासकीय विद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक निष्पत्ति का स्तर ग्रामीण शासकीय विद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक निष्पत्ति की तुलना में उच्च है।

उपरोक्त परिणामों के आधार पर यह अध्ययन इंगित करता है कि शहरी क्षेत्रों के शासकीय विद्यालयों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित सभी प्रकार के विद्यालयों में पढ़ रहे छात्रों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि ये भी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तथा समायोजन के उच्च स्तर को प्राप्त कर सकें।

संदर्भ

1. गुप्ता एच.एन. 2000 ह्यूमन वैल्यूज इन एजुकेशन, कान्सेप्ट पब्लिसिंग कम्पनी, नई दिल्ली।
2. गुड, कार्टर वी. इगलस ई. स्केट्स (1954), ''मैथड्स आफ रिसर्च'', एप्लेटन संेचुरी क्राफ्टस (डंक) न्यूयार्क।

3. जयसवाल एम.आर. (1955), ''प्राब्लम्स इन एजुकेशन'', शिक्षा, वाल्यूम XII ।
4. ठाकुर के.एन. (1989), ''उत्तर प्रदेश के उत्तर घाघरा परिक्षेत्र में सन् 1947 के बाद प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा का विकास'', शिक्षा शास्त्र में पीएच.डी. उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।
5. न्यूनतम अधिगम प्रशिक्षण मंजूषा, 1998 एन.सी.ई.आर.टी.।
6. न्यूनतम अधिगम स्तर शिक्षा प्रशिक्षण कार्यक्रम (1992), एन.सी.ई.आर.टी।
7. नवीन शिक्षा नीति 1990, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली।

तो बदल लो

–शालिनी कालड़ा

गुस्से में निकले ये शब्द, बाद में मेरे लिए हंसी का कारण बन गए।

मेरी एक पड़ोसिन अक्सर मुझसे बातें करने आ बैठती है। ज्यादातर उसका विषय होता है – मेरे पति देव की तारीफ और अपने पति देव की बुराई। दरअसल, उसके पतिदेव उसके घरेलू कामों में कोई मदद नहीं करते, जबकि मेरे पति देव को तो रसोई घर से विशेष लगाव है। हां! यह अलग बात है कि उनकी मदद के बाद मुझे रसोई समेटने में जो समय लगता है उतना खाना बनाने में भी नही लगता। लेकिन मेरी पड़ोसिन को तो इसका सपने में भी अनुमान नहीं।

एक दिन इसी बात को लेकर मेरे पतिदेव से बहस हो गई। वे तमतमाते हुए दफतर चले गए और मैं अपना गुस्सा बर्तनो पर उतार रही थी। इतने में मेरी पड़ोसिन घर आ गई। बातों – बातों में वह फिर मेरे पतिदेव की तरीफ और अपने पति की बुराई करने लगी। मैं गुस्से में तो थी ही, अचानक मेरे मुंह से निकला, तो बदल लो! मुझे अपने शब्दों का मतलब दो मिनट बाद समझ में आया। उसको तो मानो काटो तो खून नहीं। हां, उस दिन के बाद उसकी आदत जरुर बदल गई।

लघु कथा

उसका मन बदल गया

–लक्ष्मी रूपल

वह पटना का रहने वाला था। परन्तु कई वर्षों से लखनऊ की सड़कों पर साइकिल रिक्शा चलाकर अपने परिवार का भरण–पोषण करता था। एक दिन भारी–भरकम शरीर वाली एक महिला रिक्शा पर चढ़ी। उसके हाथ में एक पर्स और एक बैग भी था जिसे उसने अपने पैरों के पास रख लिया था। वह अपने गन्तव्य स्थान पर उतर गई और बैग रिक्शा के पायदान पर ही भूल गई। रिक्शा वाला किराया लेकर आगे बढ़ गया। रास्ते में सड़क के किनारे खड़े एक व्यक्ति ने हाथ दिखाकर रिक्शा रोका और बैग की ओर संकेत किया । रिक्शा वाले ने लापरवाही से बैग को उठाकर सीट के नीचे बने हुए बाक्स में डाल दिया और सवारी को लेकर आगे बढ़ गया। शाम को घर जाकर देखा तो बैग में गहने और बहुत सारे रुपये भी थे। उसने बैग उठाकर घर में रख दिया। पर वह सारी रात सो नहीं सका। सुबह होते ही बैग को लेकर पुलिस थाने की ओर चल पड़ा। रास्ते में सोचने लगा पुलिस का क्या भरोसा । कहीं मुझे ही थाने में बन्द कर दे । कह दे कि झूठ बोलता है । माल कहीं से चुराकर लाया है, अब डर के मारे थाने मे जमा करवाने चला आया। फिर रोज की कमाई का क्या होगा, बाल–बच्चे तो भूखों मर जाऐंगे। उसका मन बदल गया और उसने बैग को लाकर घर में रख दिया। सोचा, कभी दुर्दिन में पैसा काम आ जाएगा। इस प्रकार वह बैग कई वर्ष तक घर में ज्यों का त्यों पड़ा रहा।

एक दिन सवारी के इन्तजार में उसने अपना रिक्शा सड़क के किनारे खड़ा कर दिया। कुछ ही दूर पर एक ज्योतिषी पटरी पर अपना पोथी–पत्रा बिछाए बैठा था। एक व्यक्ति का हाथ देखते हुए ज्योतिषी ने कहा कि मुफ्त में मिला हुआ रुपया–पैसा अथवा कोई भी धन मिलना अच्छा लगता है। पर यह कहीं अधिक हानिकारक और अनिष्टकारी भी होता है। ये शब्द रिक्शा वाले ने भी सुने और उसके मन में वर्ष भर की सारी घटनाएं साकार हो उठीं। उसकी पत्नी इतनी बीमार हो गई कि मरते–मरते बची। बेटा एक दिन साईकिल से गिर पड़ा और उसकी टॉग टूट गई। वह स्वयं रास्ते में एक गाड़ी से टकरा गया और किसी तरह बाल–बाल बचा। पिछले दस वर्षो में तो कभी ऐसा नहीं हुआ था। हो–न–हो, यह सारा प्रभाव मुफ्त में मिले पैसे का ही है। पंडित ने ठीक ही कहा है। होगी किसी के पाप की कमाई। तभी तो बैगवाली ने आज तक न तो बैग की खोज–खबर ली और न ही अखबार के खोया–पाया समाचार के तहत इसके बारे में कुछ निकलवाया। बैग इस समय मेरे पास है तो उसके सारे बुरे कर्मों का अभिशाप भी तो मुझे ही झेलना पड़ेगा। यह सोचकर उसका मन बदल गया। उसने घर से बैग उठाया और फिर से पुलिस थाने के लिए चल पड़ा। पत्नी ने जाते समय रोका भी कि बेटी बड़ी हो रही है। कल उसका विवाह होगा तो ये गहने काम में आ जाएंगे। परन्तु उसने एक न सुनी। उस बैग के साथ सारी अशांन्ति और दुश्चिन्ता तथा दुविधा का बोझ पुलिस थाने में जमा करवा कर वह बहुत हल्का और खुश हो गया।

भ्यारखोला (मलिन बस्ती) राजकीय प्राथमिक विद्यालय राजपुर — एक अध्ययन

—अस्मा
— भीमा मनराल

सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 1.21 अरब हो गई है जबकि सन् 2001 में यह 1.02 अरब थी। अर्थात एक दशक के दौरान देश की जनसंख्या में 0.19 अरब (18.62 प्रतिशत) की बढ़ोतरी हुई है। यदि इसी अवधि में साक्षरता में हुए परिवर्तनों (तालिका — 1)पर गौर करें तो ज्ञात होता है कि सन् 2001 में देश की औसत साक्षरता दर 64.8 प्रतिशत थी जो सन् 2011 में बढ़कर 73.0 प्रतिशत हो गई। सन् 2001 में देश में पुरुष साक्षरता दर 75.26 थी जो 2011 में बढ़कर 80.9 प्रतिशत हो गई वहीं महिला साक्षरता दर सन् 2001 में 53.67 थी जो 2011 में बढ़कर 64.6 प्रतिशत हो गई।

तालिका — 1
भारत : साक्षरता दर प्रतिशत में (7 + आयु वर्ग)

	2011	2001	दशकीय वृद्धि
कुल	73.0	64.83	8.17
पुरूष	80.9	75.26	5.64
महिला	64.6	53.67	10.93

ज्ञात है कि भारतीय संविधान के निर्माताओं ने संविधान के तहत उल्लेखित राज्य के नीति निदेशक तत्वों के माध्यम से देश के समस्त नागरिकों के लिए सार्वभौमिक बुनियादी शिक्षा प्रदान किए जाने का लक्ष्य रखा था। राज्य के नीति निदेशक तत्वों के प्रावधानों के अनुसार यह लक्ष्य आजादी के बाद के दस वर्षों के भीतर प्राप्त कर लिया जाना था। लेकिन विशाल आबादी, उपयुक्त संसाधनों का अभाव, सरकारी संरचनाओं की सीमित पहुंच, एक लम्बे संघर्ष के उपरान्त जन मानस में व्याप्त शिथिलता जैसे अनेक कारणों के चलते इस लक्ष्य को निर्धारित अवधि में प्राप्त नहीं किया जा सका। स्वाधीनता के बाद केन्द्र में आई सरकारों ने एक के बाद एक कार्यक्रमों का संचालन किया जिससे देश की साक्षरता दर में लगातार बढोतरी होती रही पर सार्वभौमिक बुनियादी शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सका। अन्ततः इस लक्ष्य को प्राप्त करने के उदेश्य से बुनियादी शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाया गया। इस हेतु सन् 2009 में मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा अधिनियम पारित किया गया जिसके अनुसार अब देश में 6 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को अनिवार्य रुप से मौलिक शिक्षा प्रदान की जा रहा है जिसका समूचा खर्च स्वयं सरकार द्वारा वहन किया जा रहा है।

सन् 2001–2011 के दौरान साक्षरता दरों में हुई (तालिका 1) दशकीय वृद्धि राष्ट्रीय साक्षरता मिशन प्राधिकरण के तहत संचालित विविध साक्षरता अभियानों, मध्याह्न भोजन योजना एवं सर्व शिक्षा अभियान के निमित्त केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों तथा तमाम स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा किए गए प्रयासों का सांझा परिणाम है। लेकिन उपरोक्त आंकड़ों से यह भी स्पष्ट होता है कि वर्तमान साक्षरता दर और सार्वभौमिक बुनियादी शिक्षा के लक्ष्यों के बीच अभी भी बहुत बड़ा फासला मौजूद है। महिलाओं, अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जन–जातियों में साक्षरता का स्तर सामान्य से कहीं नीचे है। तालिका 2 से यह स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

तालिका – 2

भारत : अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जन–जाति साक्षरता दर प्रतिशत में
(7 + आयु वर्ग)

समुदाय	साक्षरता 2001			साक्षरता 2011		
	कुल	पुरुष	महिला	कुल	पुरुष	महिला
सभी समुदाय	64.83	75.26	53.67	72.98	80.88	64.63
अनुसूचित जाति	54.69	66.64	41.90	66.07	75.17	56.46
अनुसूचित जन–जाति	47.10	59.17	34.76	58.95	68.51	49.36

विदित है शिक्षा अधिकार अधिनियम – 2009 के तहत् केन्द्र व राज्य सरकारों को न केवल पर्याप्त विद्यालय खोलने हैं बल्कि खोले गए विद्यालयों में पर्याप्त संसाधन भी उपलब्ध कराने हैं। सरकार को यह सुनिशिचित करना है कि सभी विद्यालयों में सुरक्षित भवन, अच्छी कक्षाएं, शौचालय, पानी, बिजली, खेल का मैदान, खेल के सामान आदि की पूरी व्यवस्था हो। इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार प्रत्येक शिक्षक के लिए हर दिन 4 घंटे पढ़ाना भी आवश्यक है। विद्यालयों को छात्र – छात्राओं के लिए अलग – अलग शौचालय भी उपलब्ध कराने होंगे। इन प्रावधानों के अनुसार विद्यालय में नामांकित बच्चों के अभिभावकों से यह अपेक्षा की गई है कि वे 'विद्यालय प्रबन्धन समिति' बनाकर सुचारु संचालन हेतु विद्यालयों की देख–रेख करेंगे तथा उनके विकास के लिए उचित फैसले लेते हुए समय–समय पर विद्यालयों के लिए तीन–तीन साल की विकास योजनाएं भी बनाएंगे। शिक्षा अधिकार अधिनियम – 2009 के तहत् यह दिशा – निर्देश भी दिया गया है कि विद्यालयों में कक्षा 1 से 5 तक 30 बच्चों के पीछे कम से कम एक शिक्षक अनिवार्य रूप से होना चाहिए।

ज्ञात है कि शिक्षक–छात्र में 30:1 अनुपात देश के केवल 63 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में ही विद्यमान है। यदि नामांकन की ओर देखें तो भारत में प्राथमिक स्तर पर नामांकन का वर्तमान प्रतिशत 93 है। डायस (2013–14) के आकडों के अनुसार प्राथमिक स्तर पर वर्ष (2010–11) और वर्ष (2013–14) के दौरान बालक, बालिका और कुल नामांकन दर इस प्रकार है –

तालिका – 3

भारत में प्राथमिक स्तर पर सकल नामांकन दर (प्रतिशत में)

वर्ग	वर्ष (2010–11)	वर्ष (2013–14)
बालक	115.4	98.1
बालिका	116.7	100.6
कुल	116.0	99.3

यदि साक्षरता के संदर्भ में राज्यों में हुई प्रगति का अध्ययन किया जाए तो पता चलता है कि अब तक हासिल की गई उपलब्धि भी सभी राज्यों में समान रुप से विद्यमान नहीं है। तालिका चार में भारत, उत्तराखण्ड तथा केरल की तुलनात्मक स्थिति स्पष्ट की गई है। इस तालिका में प्रदर्शित आकडों से स्पष्ट होता है कि कुल साक्षरता दर हो या पुरूष, महिला, अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जन–जातियों की साक्षरता दर, उतराखण्ड की स्थिति समुचे देश की औसत स्थिति से बेहतर है पर दूसरी ओर यदि अग्रणी प्रदेश केरल से इसकी तुलना की जाए तो यह सभी मायनों में पीछे खड़ा दिखता है।

तालिका – 4

साक्षरता दर : तुलनात्मक स्थिति

	भारत	उतराखण्ड	केरल
कुल	73.0	78.82	94.00
पुरूष	80.9	87.40	96.11
महिला	64.6	70.01	92.07
अनुसूचित जाति	66.07	74.41	88.73
अनुसूचित जन–जाति	58.95	73.88	75.81

डायस (2013–14) रिर्पोट के अनुसार उत्तराखण्ड में प्राथमिक स्तर पर छात्र–शिक्षक अनुपात 18.99 है तथा सकल नामांकन दर (GER) 101.64 है। उत्तराखण्ड सरकार ने शिक्षा अधिकार अधिनियम – 2009 के तहत् यह वादा किया है कि राज्य में यदि कहीं विद्यालय और बच्चों के बीच की दूरी निर्धारित सीमा से अधिक हो और ऐसे में बच्चों का विद्यालय जाना कठिन साबित हो रहा हो तो सरकार उन्हें निःशुल्क आवास और परिवहन सुविधा भी उपलब्ध कराएगी (अमन, सितम्बर 2015)।

प्राथमिक विद्यालयों में छात्रों के नामांकन को बढ़ाने, उनकी उपस्थिति को कक्षा में बनाये रखने, पौष्टिक आहार उपलब्ध कराने आदि कई लक्ष्यों को केन्द्र में रखकर भारत सरकार द्वारा शुरू की गई मध्याह्न भोजन योजना भी उत्तराखण्ड में बखूबी चल रही है जिसके कारण न केवल नामांकन में बढोतरी हुई है बल्कि सामाजिक और लैंगिक समानता भी बढ़ी है। इससे स्कूलों में भागीदारी, सामाजिक समानता और बच्चों के समग्र स्वस्थ्य विकास में

मदद मिली है और प्राथमिक विद्यालयों में नियमित कक्षा में आने वाले छात्रों की संख्या में भारी बढ़ोतरी हुई है।

उत्तराखण्ड को विशेष राज्य का दर्जा प्राप्त है। बावजूद इसके यहां प्राथमिक शिक्षा की स्थिति सन्तोषजनक नहीं है। राज्य में ऐसे विद्यालयों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है जो एक समय अत्यंत व्यवस्थित रुप से संचालित होते थे एवं अपने आस– पडोस के इलाको में शिक्षा के प्रभावी केन्द्र माने जाते थे, अब छात्रों के अभाव में बन्द होने के कगार पर आ खड़ा हुए हैं। इन सबके कारण एक विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गई है। कई इलाके ऐसे हैं जहां पर्याप्त संख्या में विद्यालयों का अभाव है तो कई साजों–सामान से युक्त विद्यालय छात्रों को तरस रहे हैं। इसलिए यह ज्ञात करना आवश्यक हो जाता है कि आखिर वे कौन से कारक हैं जिनके कारण उत्तराखण्ड वांछित प्रदर्शन नहीं कर पा रहा है।

प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी ने राजकीय प्राथमिक विद्यालय राजपुर (प्राचीन) जो उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्र अल्मोड़ा जनपद की उत्तरी दिशा में अल्मोड़ा–पिथौरागढ़ राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 87 से तकरीबन 50 मीटर की दूरी पर स्थित है और इस क्षेत्र का अति प्राचीन विद्यालय माना जाता है, का केस अध्ययन यह ज्ञात करने का प्रयास किया है कि राज्य में प्राथमिक शिक्षा और विद्यालयों की वस्तु स्थिति क्या है तथा वर्तमान में यहां सुधार की दिशा क्या होनी चाहिए।

धारानौला, वाल्मिकी बस्ती, तल्ला ओढ़खोला आदि से लगी इस राजकीय प्राथमिक विद्यालय राजपुर (प्राचीन) का केस अध्ययन प्राथमिक एवं द्वितीयक साधनों से प्राप्त की गई सामग्री के आधार पर किया गया है। प्राथमिक स्रोत के अन्तर्गत उन अभिभावकों एवं राजपुर के उन व्यक्तियों को रखा गया है जो प्रत्यक्ष रूप से विद्यालय को बचाने के लिए जुटे रहे जबकि द्वितीयक स्रोत के रूप में ग्राम के निवासियों के साक्षात्कार से प्राप्त आंकड़ों को सम्मिलित किया गया है। इसके अतिरिक्त विद्यालय की पूर्व शिक्षिकाओं एवं सम्बन्धित व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करके भी सूचनाएं प्राप्त की गई है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि विद्यालय में मूलभूत सुविधाओं का भी अभाव है। अतः विद्यालय के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए सुधार की दिशा में बेहतर प्रयास की आवश्यकता है।

विद्यालय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

यह विद्यालय अल्मोड़ा जिले के हवालबाग विकासखण्ड के भ्यारखोला नामक ग्राम में स्थित हैं। विद्यालय अभिलेख (अप्रैल 2014) के अनुसार भ्यारखोला ग्राम की कुल जनसंख्या तथा यहां 0–18 आयु वर्ग के कुल छात्र–छात्राओं का विवरण तालिका 5 के अनुसार है –

तालिका – 5

राजकीय प्राथमिक विद्यालय राजपुर द्वारा आच्छादित ग्राम भ्यारखोला की जनसंख्या

वर्ग	जनसंख्या	कुल जनसंख्या	छात्र / छात्रा कुल संख्या (0–18 आयुवर्ग)
महिला	733	1471	251
पुरूष	738		

विद्यालय की स्थापना आजादी से पूर्व सन् 1932 में हुई थी। उस समय इस ग्रामसभा के 2 से 3 किलोमीटर की परिधि में कोई अन्य प्राथमिक विद्यालय स्थापित नहीं था फलस्वरूप स्थापना के कुछ समय पश्चात् ही इस विद्यालय में छात्रों का नामांकन व पजीकरण संख्या 400 से अधिक हो गयी थी। छात्रों की संख्या में वृद्धि को देखकर विद्यालय के विस्तार की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। जागरूक ग्रामीणों द्वारा सरकार व समाज के अन्य वरिष्ठ नागरिकों के सहयोग से पूर्व में स्थापित विद्यालय के साथ ही एक अन्य नवीन प्राथमिक विद्यालय की स्थापना सन् 1981 ईसवीं में की गयी। इस विद्यालय को राजकीय प्राथमिक विद्यालय (नवीन) के नाम से संचालित किया गया। अल्मोड़ा शहर के विस्तार व शहरीकरण के कारण इस ग्रामसभा द्वारा आच्छादित कई और क्षेत्रो में नवीन विद्यालयों की स्थापना की गई, जिसके कारण दोनों प्राथमिक विद्यालयों में छात्रो की संख्या धीरे–धीरे घटने लगी। कृषि क्षेत्र की कमी व ऊसर भूमि होने के कारण ग्रामीणों को अपने जीविकोर्पाजन के लिए परेशानियों का सामना करना पड़ा जिसके कारण कई परिवार रोजगार तलाश करने के उद्देश्य से राजपुर ग्राम से पलायन करने लगे और विद्यालय में छात्रों की संख्या निरन्तर घटती चली गई। परिणामस्वरूप, दोनों प्राथमिक विद्यालयों का एकीकरण कर नवंबर 2010 में राजकीय प्राथमिक विद्यालय राजपुर (प्राचीन) के नाम से संचालित कर दिया गया। अब इस विद्यालय में छात्र नामांकन संख्या वर्तमान में घटकर मात्र 24 रह गई है।

विद्यालय भूमि एवं भवन की स्थिति :

वर्तमान में यह विद्यालय अत्यधिक जर्जर अवस्था में है, इसमें कक्षा–कक्षों की कुल संख्या चार है, और रसोईघर टिन शैड का बना हुआ एक सामान्य कक्ष है। विद्यालय भवन की छत, फर्श एवं प्रागंण क्षतिग्रस्त अवस्था में हैं। विद्यालय में दो शौचालय बनाये गये हैं जिनमें से एक छात्रों के लिए और दूसरा छात्राओं के लिए हैं, परन्तु शौचालय में पानी की समुचित व्यवस्था नहीं है। शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के लिए पीने के पानी की व्यवस्था भी नहीं है। विद्यालय में बिजली की कोई व्यवस्था न होने के कारण कक्षा–कक्षों में समुचित रोशनी का अभाव रहता है, जिस कारण सभी विद्यार्थियों को मजबूरन विद्यालय के बरामदें में ही बैठकर पठन–पाठन करना पड़ता है। वर्षाकाल एवं गर्मियों के मौसम में शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया बाधित होती है। छात्रों को गर्मियों के मौसम में तेज धूप का सामना करना पड़ता है, और वर्षा के मौसम में छात्र भीग जाते हैं, जिसके कारण शिक्षण कार्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

फलस्वरूप गर्मी और वर्षा के दौरान छात्र उपस्थिति कम रहती है। विद्यालय में छात्रों के खेलने के लिए खाली मैदान विद्यालय भवन के ठीक सामने खाली जगह में स्थित है, लेकिन भूमि असमतल होने के कारण छात्रों को खेलने में असुविधा होती है, जिसका प्रतिकूल प्रभाव उनके शारिरिक विकास पर पड़ता है।

समस्या :

इस विद्यालय की भूमि का पंजीकरण विद्यालय के नाम पर नहीं हैं। ज्ञात है कि उत्तराखण्ड सरकार ने वर्ष 2009–2010 में एक आदेश जारी कर यह सुनिश्चित करने का निर्देश दिया है कि प्राथमिक स्तर के ऐसे सभी विद्यालय जो निजी भूमि पर संचालित हो रहे हैं, उन्हें समीप स्थित अन्य विद्यालयों में स्थानान्तरित एवं समायोजित कर दिया जाए। इस आदेश के अनुपालन में राजकीय प्राथमिक विद्यालय, राजपुर (प्राचीन) को इसके समीपस्थ स्थित राजकीय प्राथमिक विद्यालय, गोपालधारा में स्थानान्तरित किया जाना प्रस्तावित एवं सुनिश्चित हुआ है। वार्ड भ्यारखोला मोहल्ले का एक मात्र प्राचीनतम विद्यालय होने के कारण ग्रामवासियों ने इस विद्यालय के अन्यत्र स्थानान्तरण का विरोध किया एवं जिलाधिकारी से उचित कार्यवाही करने की मांग की है। भ्यारखोला के ग्रामीणों द्वारा विरोध–प्रदर्शन एवं इस क्षेत्र के अम्बेडकर क्षेत्र तथा अनुसूचित जाति बाहुल्य क्षेत्र होने के कारण शासन द्वारा स्थानान्तरण न किये जाने का निर्णय लिया गया और विद्यालय के लिए नवीन भूमि के चयन की व्यवस्था का कार्य ग्रामवासियों को सौप दिया गया। इस निर्णय के पश्चात् यह विद्यालय अपने पूर्व स्थान पर विधिवत् संचालित हो रहा है।

विद्यालय के लिए नवीन स्थल के चयन के सम्बन्ध में ग्रामीणों द्वारा क्षेत्रीय स्तर पर चंदा एकत्रित करने का कार्य किया गया और सर्वसम्मति से नवीन भूमि का चयन करने के बाद उसका क्रय किया गया। विद्यालय की नवीन चयनित भूमि विद्यालय से लगभग 500 मीटर नीचे की ओर स्थित है जिसका क्षेत्रफल लगभग 3 नाली है।

नये विद्यालय भवन हेतु बजट :

संकुल संसाधन समन्वय केन्द्र (CRC) द्वारा विद्यालय की वर्तमान शिक्षिका श्रीमती आशा पन्त के संज्ञान में लाया गया है कि कक्षा–कक्षों के निर्माण के लिए 2 लाख रूपये की धनराशि स्वीकृत की गयी हैं। साथ ही रसोईघर एवं शौचालय निर्माण के लिए 1 लाख रूपयों की स्वीकृति मिली हैं। इस प्रकार नये विद्यालय निर्माण कार्य के लिए कुल 3 लाख रूपये स्वीकृत किये गये हैं।

विद्यालय का फर्नीचर एवं अन्य सामग्री :

फर्नीचर के नाम पर विद्यालय में तीन मेज, 10 कुर्सियां तथा दो चटाईयां हैं। शिक्षण–सहायक सामग्री के रूप में 03 श्यामपट (ब्लैक बोर्ड) हैं तथा पाठ्यक्रम से

सम्बन्धित पुस्तकें, श्वेतवर्तिका, स्वच्छक एवं चार्ट (लेखनी, पहाड़े, वर्णमाला) इत्यादि सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं। विद्यार्थियों के लिए खेल सामग्री विद्यालय में उपलब्ध नहीं हैं। विद्यालय में सहायक अध्यापक के रुप में एक शिक्षक एवं भोजन माता के रुप में एक शिक्षणेत्तर कर्मचारी है। प्रधानाध्यापक का पद स्वीकृत होते हुए भी रिक्त है। इस प्रकार सिर्फ एक अध्यापिका कार्यरत होने के कारण शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया सुचारू रूप से संचालित नहीं हो पाती है।

विद्यालय में विद्यार्थियों की स्थिति :

विद्यालय में विद्यार्थियों की कुल संख्या मात्र 24 है जिसमें 13 छात्र एवं 11 छात्राएं हैं। कक्षा एक में एक छात्रा सहित कुल तीन विद्यार्थी, दो में दो छात्रा सहित कुल चार विद्यार्थी, कक्षा तीन में तीन छात्रा सहित कुल चार विद्यार्थी, कक्षा चार में एक छात्रा सहित कुल छः विद्यार्थी तथा कक्षा पांच में चार छात्राओं सहित कुल सात विद्यार्थी हैं। वर्तमान में विद्यालय में सामान्य वर्ग के केवल 6 विद्यार्थी अध्यमन हैं एवं अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की संख्या 18 हैं जिसके अन्तर्गत 9 छात्राएं तथा 9 छात्र हैं ।

विद्यालय के शैक्षिक कियाकलाप :

विद्यालय में समय प्रातः 09:30 से अपराह्न 3:30 तक है। कक्षा–शिक्षण कार्य के अतिरिक्त विद्यालय में प्रार्थना के बाद कभी–कभी व्यायाम भी करवाया जाता है। नीति–वाक्य एवं प्रेरक–प्रसंग प्रार्थना स्थल पर प्रस्तुत किए जाते हैं। शिक्षिका द्वारा विद्यार्थियों से कविता पाठ भी करवाया जाता है।

एक ही शिक्षिका द्वारा सभी विद्यार्थियों को एक साथ बैठाकर बहु–शिक्षण क्रिया द्वारा पढ़ाए जाने के कारण शिक्षण–अधिगम को प्रभावशाली बनाया जाना सम्भव नहीं हो पाता है। सामान्यतः विद्यालय बन्द होने का समय 3 बजकर 30 मिनट पर शिक्षिका या भोजनमाता के अनुपस्थिति होने पर कभी–कभी विद्यालय समय से पूर्व भी बन्द कर दिया जाता है। शिक्षिका की अनुपस्थिति में अथवा प्रशिक्षण कार्यक्रम में उपस्थित होने पर शिक्षण कार्य आंगनबाड़ी कार्यकत्रियों अथवा दूसरे समीपस्थ विद्यालय के अध्यापक के द्वारा व्यवस्था के रूप मे किया जाता है।

विद्यालय की पाठ्य सहगामी क्रियाकलाप :

खेलकूद : खेल प्रतियोगिताओं हेतु विद्यार्थियों को संकुल संसाधन केन्द्र, ब्लॉक स्तर, जिला स्तर एवं प्रदेश स्तर पर प्रतिभाग करवाया जाता है। पूर्व वर्षों में बजट की व्यवस्था क्रीडा शुल्क की धनराशि से की जाती थी। वर्तमान में छात्रों से किसी भी प्रकार का शुल्क नही लिये जाने का प्रावधान है एवं क्रीड़ा शुल्क भी नहीं लिया जाता है । यहां आयोजित की जाने वाली प्रतियोगिताएं निम्नलिखित हैं–

प्रतियोगिताएं	प्रतियोगिताओं का नाम
दौड़	100 मी. तथा 200 मी. एवं रिले दौड – 4X100 मी. एवं 4X400 मी.
कूद	ऊँची कूद, लम्बी कूद, तिहरी कूद
थ्रोइंग इवेंट्स	चक्का फैंक, भाला फैंक
देशज खेल	कब्ड्डी, खो–खो, कुर्सी दौड़ व रस्सी कूद

छात्रवृत्तियां, गणवेश एवं निःशुल्क पुस्तक वितरण :

विद्यालय में प्रतिवर्ष छात्रवृत्ति का वितरण किया जाता है जिसमें अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति एवं पिछडे वर्ग के विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों को 12 माह की छात्रवृत्ति दी जाती है। सत्र 2012–13 में विद्यालय के 16 छात्र–छात्राओं को छात्रवृत्ति का लाभ प्राप्त हुआ। छात्रवृत्ति के तहत प्रत्येक विद्यार्थी को 600/–रूपये प्रतिवर्ष दिए जाते हैं जिसका वितरण 50/– रूपये प्रतिमाह के दर से भी किया जाता है।

सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों के लिये छात्रवृत्ति की व्यवस्था नहीं है। पिछडे वर्ग के विद्यार्थियों के लिए केवल 10 माह की छात्रवृत्ति स्वीकृत है। विद्यालय में गणवेश का वितरण भी अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों में ही किया जाता है। अन्य विद्यार्थियों के लिए गणवेश की व्यवस्था सरकार द्वारा नहीं की गई है। विद्यालय के सभी विद्यार्थियों में कक्षावार पठन–पाठन सामग्री जैसे– पुस्तकें, पैन, पेन्सिल, रबर, कॉपी, बस्ते आदि का समान रूप से वितरण किया जाता है।

विद्यालय प्रबंधन समिति :

विद्यालय में प्रबंधन समिति का गठन नियमानुसार किया गया है जिसमें अध्यक्ष, सचिव सहित 10 विद्यार्थियों के अभिभावक अन्य सदस्य के रुप में सम्मिलित हैं। प्रबंधन समिति की बैठक प्रत्येक माह के प्रथम शनिवार को बुलाई जाती है।

विद्यालय की समस्याएं :

राजकीय प्राथमिक विद्यालय राजपुर (प्राचीन) के प्रत्यक्ष अवलोकन से विद्यालय प्रशासन, छात्र, कर्मचारी, शिक्षण अधिगम प्रक्रिया आदि से सम्बन्धित अनेक समस्याएं पायी गईं –

विद्यार्थी और विद्यालय प्रशासन संबंधी समस्याएं –

- विद्यालय का भवन जर्जर अवस्था में हैं जिसका फर्श एवं छत क्षतिग्रस्त है।
- विद्यार्थियों के बैठने के लिये चटाईयों की समुचित व्यवस्था नहीं है।
- विद्यालय में शौचालयों की समुचित व्यस्वस्था नहीं हैं।

- विगत कई वर्षों से पीने के पानी की समस्या बनी हुई है जो गर्मियों में अत्यधिक बढ जाती है।
- विद्यार्थियों के लिये खेलने का एक छोटा मैदान है लेकिन भूमि असमतल होने के कारण वह खेलने योग्य नहीं है।
- बिजली की व्यवस्था न होने से शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- विद्यालय निजी भूमि पर संचालित हो रहा है सरकारी भूमि पर नहीं।

शिक्षण–अधिगम संबंधी समस्याएं –

- शिक्षण कार्य केवल एक ही अध्यापिका द्वारा किया जाता है जिसके कारण शिक्षण – कार्य प्रतिदिन सुचारू रूप से नहीं चल पाता है।
- छात्र नामांकन निरन्तर घटता जा रहा है।
- शिक्षण को रोचक बनाने के लिये किसी भी प्रकार की शिक्षण सहायक–सामग्री उपलब्ध नहीं है।
- शिक्षण रोचक न होने के कारण छात्र अधिगम में रूचि नहीं लेते है और अधिकतर कक्षा में अनुपस्थित रहते हैं।
- शिक्षण कार्य कक्षाओं की अपेक्षा बरामदे में किया जाता है।
- बहु शिक्षण पद्धति का प्रयोग करते हुए सभी कक्षाओं के छा़त्रों को एक साथ पढाया जाता हैं।

शिक्षक संबंधी समस्याएं –

- पूरे दिन एक ही शिक्षिका शिक्षण कार्य करती है जिससे उसे मानसिक थकान अधिक हो जाती है।
- प्रधानाध्यापक का पद रिक्त है जिस कारण प्रशासनिक कार्य बाधित होता है।
- विद्यालय की साफ–सफाई के लिये कोई कर्मचारी नहीं है।

शिक्षण अभिभावक संबंधी समस्याएं –

- शिक्षक–अभिभावकों के बीच सम्पर्क बहुत कम होने के कारण अभिभावकों को छा़त्रों की आवश्यकताओं एवं शैक्षिक समस्याओं का ज्ञान नहीं हो पाता है।
- अभिभावक बैठक में रूचि नहीं लेते हैं।
- लगभग सभी अभिभावकों की आर्थिक स्थिति निम्नतम् स्तर की हैं।
- अभिभावक बालकों के शिक्षा के प्रति जागरूक नहीं हैं।

विद्यालय सौन्दर्यीकरण एवं स्वच्छता संबंधी समस्याएं –

- विद्यालय के सौन्दर्यीकरण की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है।

- विद्यालय तथा शिक्षकों का यथासमय पर्यवेक्षण व निरीक्षण नहीं होता है जिससे समस्याएं जस के तस बनी रहती हैं।
- कक्षा–कक्षों में वर्षाकाल में पानी भर जाता है।
- शिक्षकों के लिये प्रशिक्षण –कार्यक्रमों का अभाव है।

समस्याओं से सम्बन्धित सुझाव

इस अध्ययन से विद्यालय की वर्तमान स्थिति में सुधार हेतु अनेक सुझाव उभरकर सामने आए जिनके क्रियान्वयन से ना केवल छात्रों के नामांकन बल्कि विद्यालय तथा शिक्षा के स्तर में भी सुधार लाया जा सकेगा। विद्यालय की समस्याओं को दूर करनें के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत हैं –

- विद्यार्थी और विद्यालय प्रशासन संबंधी सुझाव : विद्यालय भवन का पुननिर्माण, शौचालयों की समुचित व्यवस्था, पीने के पानी की व्यवस्था, विद्यार्थियों को बैठने के लिए चटाईयों अथवा बैंन्च की व्यवस्था, खेलने के लिए समतल मैदान, विद्यालय का निजी भूमि से विद्यालय के लिए खरीदी गई भूमि पर स्थानान्तरण किया जाना तथा बिजली की व्यवस्था किया जाना ताकि विद्यार्थी कक्षा–कक्षों में बैठकर पढ़ सकें और सर्दियों एवं वर्षा के समय शिक्षण–अधिगम प्रभावित न हो।
- शिक्षण अधिगम सम्बन्धी सुझाव **:** शिक्षण में अवरोध रोकने हेतु विद्यालय में शिक्षकों की संख्या बढ़ाया जाना, विद्यालय में छात्रों की संख्या में वृद्धि के लिए ग्रामीणों कों शिक्षा के प्रति जागरुक करना, शिक्षण रुचि पूर्ण बनाने के लिए सहायक–सामग्री का प्रयोग, अलग–अलग कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए उनकी रुचि एवं क्षमता के अनुरुप शिक्षण विधि का प्रयोग तथा विद्यालय के सौन्दर्यीकरण को बनाये रखने हेतु सफाई कर्मचारी की व्यवस्था।
- शिक्षक सम्बन्धित सुझाव : विद्यालय के सुचारु संचालन के लिए प्राधानाचार्य, क्लर्क, चपरासी, आदि की नियुक्ति तथा समाज और विद्यालय के बीच सम्बन्ध स्थापित करने हेतु अभिभावकों को शिक्षा के प्रति जागरुक किया जाना।

इसके अतिरिक्त प्रशासनिक स्तर पर विद्यालय की समस्याओं का निरीक्षण किया जाना चाहिए ताकि उनकों दूर करके विद्यालय और शिक्षण–अधिगम में सुधार किया जा सकें। साथ ही साथ शिक्षा, शिक्षण–विधियों, अध्ययन सामग्री आदि में हो रहे परिवर्तनों एवं नवचारों से शिक्षकों को अवगत कराने के लिये तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जाना चाहिए।

प्रस्तुत अध्ययन से ये निष्कर्ष प्राप्त होता है कि सरकार की शैक्षिक नीतियों में प्राथमिक शिक्षा के सन्दर्भ में जो सुविधाएं प्रदान की गई हैं वास्तविक धरातल पर उनका अभाव दिखाई

देता है। विद्यालय में न तो बच्चों के बैठने के लिए कमरे हैं, न पीने के लिए पानी, न बिजली की व्यवस्था है और न ही शौचालय की पूर्ण व्यवस्था है और तो और बैठकर पढ़ने के लिए चटाईयां भी पर्याप्त संख्या में उपलब्ध नहीं है। ऐसी शैक्षिक परिस्थितियों में न तो विद्यालय में छात्रों के नामांकन में कोई वृद्धि हो सकती है और न ही वे शिक्षा के प्रति आकर्षित हो सकते हैं, फिर सर्वशिक्षा अभियान और मध्याह्न भोजन योजना जैसे कार्यक्रमों के संचालन से क्या लाभ होगा ? इसलिए प्राथमिक शिक्षा से संबंधित सभी महत्वपूर्ण घटकों यथा प्राथमिक विद्यालय, शिक्षक और विद्यार्थी द्वारा प्रतिदिन सामना किए जा रहे समस्याओं के स्थाई समाधान ढूंढ़े जाने चाहिएं।

संदर्भ

1. Educational Statistics at a Glance (2013), Govt. of India, MHRD Bureau of Planning, Monitoring and Statistics, New Delhi.
2. The Status of Health an Education in India Critical Questions in the Nation's Development, Ensuring Universal Access to Health and Education in India, Nov 2007. Publisher : WADA NA TODO ABHIYAN, New Delhi.
3. Department of School Education and Literacy, MHRD, Govt. of India.
4. Education, India (2015).
5. Uttarakhand.NIC.in
6. www. Schooleducationuk. In
7. www. Wikipedia.in
8. www. Scertuk.gov .in
9. www. Mhrd.gov.in
10. प्रगति प्रतिवेदन (2014–15), एस.सी.ई.आर.टी., देहरादून, उत्तराखण्ड।
11. शिक्षा, भारत (2014), 58वां संस्करण, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार।
12. सूचना पत्र (2014–15), अमन फाउन्डेशन, अल्मोड़ा।

संविधान सभा का समापन भाषण

भीमराव अंबेडकर (1891–1956)

भारतीय संविधान की रचना हेतु गठित संविधान सभा में कुल 389 सदस्य थे लेकिन 3 जून 1947 को पाकिस्तान के लिए अलग संविधान सभा के गठन के उपरान्त इसके सदस्यों की कुल संख्या 299 रह गई। संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसंबर, 1946 को आयोजित हुई थी और कुल मिलाकर यह 2 वर्ष 11 महीने 18 दिनों तक चली। संविधान की प्रारूप निर्माण समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अंबेडकर थे जिन्होंने इस सभा को इसके द्वारा औपचारिक रूप से अपना कार्य समाप्ति की घोषणा किए जाने से एक दिन पूर्व संबोधित किया था। उनका स्वर, आह्लादपूर्ण, फिर भी गंभीर और विचार–प्रधान था। उन्होंने अपने उस ऐतिहासिक भाषण में प्रजातंत्र में जन–आन्दोलनों का स्थान, करिश्माई नेताओं का अंधानुकरण और मात्र राजनीतिक प्रजातंत्र की सीमाओं के बारे में जो चेतावनियां दीं थीं वे आज भी प्रासंगिक हैं। सच कहा जाए तो वे चेतावनियां आज शायद 1949 से भी अधिक प्रासंगिक हैं। प्रस्तुत है उस भाषण का महत्वपूर्ण कलेवर।

महोदय, 9 दिसंबर, 1946 को हुई संविधान सभा की पहली बैठक के बाद अब दो वर्ष, ग्यारह महीने और सत्रह दिन हो जाऐंगे। इस अवधि के दौरान संविधान सभा की कुल मिलाकर ग्यारह बैठकें हुई हैं। इन ग्यारह सत्रों में से छह उद्देश्य प्रस्ताव पास करने तथा मूलभूत अधिकारों पर, संघीय संविधान पर, संघ की शक्तियों पर, राज्यों के संविधान पर, अल्पसंख्यकों पर, अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों पर बनी समितियों की रिपोर्टों पर विचार करने में व्यतीत हुए। सातवें, आठवें, नौवें, दसवें और ग्यारहवें सत्र संविधान के प्रारूप पर विचार करने के लिए उपयोग किए गए। संविधान सभा के इन ग्यारह सत्रों में 165 दिन कार्य हुआ। इनमें से 114 दिन संविधान के प्रारूप पर विचारार्थ लगाए गए।

प्रारूप समिति की बात करें तो वह 29 अगस्त, 1947 को संविधान सभा द्वारा चुनी गई थी। उसकी पहली बैठक 30 अगस्त को हुई थी। 30 अगस्त से 141 दिनों तक वह प्रारूप–संविधान को तैयार करने में जुटी रही। प्रारूप समिति द्वारा आधार रूप में इस्तेमाल किए जाने के लिए संवैधानिक सलाहकार द्वारा बनाए गए प्रारूप संविधान में 243 अनुच्छेद और 13 अनुसूचियां थीं। प्रारूप समिति द्वारा संविधान सभा को पेश किए जाने की अवधि के अंत तक प्रारूप संविधान में 315 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां थीं। उस पर विचार किए जाने की अवधि के अंत तक प्रारूप संविधान में अनुच्छेदों की संख्या बढ़कर 386 हो गई थी। अपने अंतिम स्वरूप में प्रारूप संविधान में 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां हैं। प्रारूप संविधान में कुल मिलाकर लगभग 7,635 संशोधन प्रस्तावित किए गए थे। इनमें से कुल मिलाकर 2,473 संशोधन वास्तव में सदन के विचारार्थ प्रस्तुत किए गए।

मैं इन तथ्यों का उल्लेख इसलिए कर रहा हूं कि एक समय यह कहा जा रहा था कि अपना काम पूरा करने के लिए सभा ने बहुत लंबा समय लिया है और यह कि वह आराम से कार्य करते

हुए सार्वजनिक धन का अपव्यय कर रही है। उसकी तुलना नीरो से की जा रही थी, जो रोम के जलने के समय वंशी बजा रहा था। क्या इस शिकायत का कोई औचित्य है? जरा देखें कि अन्य देशों की संविधान सभाओं ने, जिन्हें उनका संविधान बनाने के लिए नियुक्त किया गया था, कितना समय लिया। कुछ उदाहरण लें तो अमेरिकन कन्वेंशन ने 25 मई, 1787 को पहली बैठक की और अपना कार्य 17 सिंतबर, 1787 अर्थात् चार महीनों के भीतर पूरा कर लिया। कनाडा की संविधान सभा की पहली बैठक 10 अक्तूबर 1864 को हुई और दो वर्ष पांच महीने का समय लेकर मार्च 1867 में सविधान कानून बनकर तैयार हो गया। ऑस्ट्रेलिया की संविधान सभा मार्च 1891 में बैठी और नौ वर्ष लगाने के बाद 9 जुलाई, 1900 को संविधान कानून बन गया। दक्षिण अफ्रीका की सभा की बैठक अक्तूबर 1908 में हुई और एक वर्ष के श्रम के बाद 20 सिंतबर, 1909 को संविधान कानून बन गया। यह सच है कि हमने अमेरिकन या दक्षिण अफ्रीकी सभाओं की तुलना में अधिक समय लिया। परंतु हमने कनाडियन सभा से अधिक समय नहीं लिया और ऑस्ट्रेलियन सभा से तो बहुत ही कम। संविधान–निर्माण में समयावधियों की तुलना करते समय दो बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। एक तो यह कि अमेरिका, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका और ऑस्ट्रलिया के संविधान हमारे संविधान के मुकाबले बहुत छोटे आकार के हैं। जैसा मैंने बताया, हमारे संविधान में 395 अनुच्छेद हैं, जबकि अमेरिकी संविधान में केवल 7 अनुच्छेद हैं, जिनमें से पहले 4 कुल मिलाकर 21 धाराओं में विभाजित हैं। कनाडा के संविधान में 147, ऑस्ट्रेलियाई में 128 और दक्षिण अफ्रीका में 153 धाराएं हैं। याद रखने लायक दूसरी बात यह है कि अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रलिया और दक्षिण अफ्रीका के संविधान निर्माताओं को संशाधनों की समस्या का सामना नहीं करना पड़ा। वे जिस रूप में प्रस्तुत किए गए, वैसे ही पास हो गए। इसकी तुलना में इस संविधान सभा को 2,473 संशोधनों का निपटारा करना पड़ा। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए विलंब के आरोप मुझे बिल्कुल निराधान लगते हैं और इतने दुर्गम कार्य को इतने कम समय में पूरा करने के लिए यह सभा स्वयं को बधाई दे सकती है।

प्रारूप समिति द्वारा किए गए कार्य की गुणवत्ता की बात करें तो श्री नजीरूद्दीन अहमद ने उसकी निंदा करने को अपना फर्ज समझा। उनकी राय में प्रारूप समिति द्वारा किया गया कार्य न तो तारीफ के काबिल है, बल्कि निश्चित रूप से औसत से कम दर्जे का है। प्रारूप समिति के कार्य पर सभी को अपनी राय रखने का अधिकार है और अपनी राय व्यक्त करने के लिए श्री नजीरूद्दीन का स्वागत है। श्री नजीरूद्दीन अहमद का खयाल है कि प्रारूप समिति के किसी भी सदस्य के मुकाबले उनमें ज्यादा प्रतिभा है। प्रारूप समिति उनके इस दावे को चुनौती नहीं देना चाहती। इस बात का दूसरा पहलू यह है कि यदि सभा ने उन्हें इस समिति में नियुक्त करने के काबिल समझा होता तो समिति अपने बीच उनकी उपस्थिति का स्वागत करती। यदि संविधान–निर्माण में उनकी कोई भूमिका नहीं थी तो निश्चित रूप से इसमें प्रारूप समिति का कोई दोष नहीं है।

प्रारूप समिति के प्रति अपनी नफरत जताने के लिए श्री नजीरूद्दीन ने उसे एक नया नाम दिया है। वे उसे 'ड्रिलिंग कमेटी' कहते हैं। निस्संदेह श्री नजीरूद्दीन अपने व्यंग्य पर खुश होंगे। परंतु यह साफ है कि वह नहीं जानते कि बिना कुशलता के बहने और कुशलता के साथ बहने में अंतर है। यदि प्रारूप समिति ड्रिल कर रही थी तो ऐसा कभी नहीं था कि स्थिति पर उसकी पकड़ मजबूत न हो। वह केवल यह सोचकर पानी में कांटा नहीं डाल रही थी कि संयोग से मछली फंस जाए। उसे

जाने–पहचाने पानी में लक्षित मछली की तलाश थी। किसी बेहतर चीज की तलाश में रहना प्रवाह में बहना नहीं है। यद्यपि श्री नजीरूद्दीन ऐसा कहकर प्रारूप समिति की तारीफ करना नहीं चाहते थे, मैं इसे तारीफ के रूप में हीं लेता हूं। समिति को जो संशोधन दोषपूर्ण लगे, उन्हें वापस लेने और उनके स्थान पर बेहतर संशोधन प्रस्तावित करने की ईमानदारी और साहस न दिखाया होता तो वह अपना कर्तव्य–पालन न करने और मिथ्याभिमान की दोषी होती। यदि यह एक गलती थी तो मुझे खुशी है कि प्रारूप समिति ने ऐसी गलतियों को स्वीकार करने में संकोच नहीं किया और उन्हें ठीक करने के लिए कदम उठाए।

यह देखकर मुझे प्रसन्नता होती है कि प्रारूप समिति द्वारा किए गए कार्य की प्रशंसा करने में एक अकेले सदस्य को छोड़कर संविधान सभा के सभी सदस्य एकमत थे। मुझे विश्वास है कि अपने श्रम की इतनी सहज और उदार प्रशंसा से प्रारूप समिति को प्रसन्नता होगी। सभा के सदस्यों और प्रारूप समिति के मेरे सहयोगियों द्वारा मुक्त कंठ से मेरी जो प्रशंसा की गई है, उससे मैं इतना अभिभूत हो गया हूं कि अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए मेरे पास पर्याप्त शब्द नहीं हैं। संविधान सभा में आने के पीछे मेरा उद्देश्य अनुसूचित जातियों के हितों की रक्षा करने से अधिक कुछ नहीं था। मुझे दूर तक यह कल्पना नहीं थी कि मुझे अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपा जाएगा। इसीलिए, उस समय मुझे घोर आश्चर्य हुआ, जब सभा ने मुझे प्रारूप समिति के लिए चुन लिया। जब प्रारूप समिति ने मुझे उसका अध्यक्ष निर्वाचित किया तो मेरे लिए यह आश्चर्य से भी परे था। प्रारूप समिति में मेरे मित्र सर अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर जैसे मुझसे भी बड़े, श्रेष्ठतर और अधिक कुशल व्यक्ति थे। मुझ पर इतना विश्वास रखने, मुझे अपना माध्यम बनाने एवं देश की सेवा का अवसर देने के लिए मैं संविधान सभा और प्रारूप समिति का अनुगृहीत हूं। (करतल–ध्वनि)

जो श्रेय मुझे दिया गया है, वास्तव में उसका हकदार मैं नहीं हूं। वह श्रेय संविधान सभा के संवैधानिक सलाहकार सर बी.एन.राव को जाता है, जिन्होंने प्रारूप समिति के विचारार्थ संविधान का एक कच्चा प्रारूप तैयार किया। श्रेय का कुछ भाग प्रारूप समिति के सदस्यों को भी जाना चाहिए जिन्होंने 141 बैठकों में भाग लिया और नए फॉर्मूले बनाने की जिनकी दक्षता तथा विभिन्न दृष्टिकोणों को स्वीकार करके उन्हें समाहित करने की सामर्थ्य के बिना संविधान–निर्माण का कार्य सफलता की सीढ़ियां नहीं चढ़ सकता था। श्रेय का एक बड़ा भाग संविधान के मुख्य ड्राफ्ट्समैन श्री एस.एन.मुखर्जी को जाना चाहिए। जटिलतम प्रस्तावों को सरलतम व स्पष्टतम कानूनी भाषा में रखने की उनकी सामर्थ्य और उनकी कड़ी मेहनत का जोड़ मिलना मुश्किल है। वह सभा के लिए एक संपदा रहे हैं। उनकी सहायता के बिना संविधान को अंतिम रूप देने में सभा को कई वर्ष और लग जाते। मुझे श्री मुखर्जी के अधीन कार्यरत कर्मचारियों का उल्लेख करना भूलना नहीं चाहिए, क्योंकि मैं जानता हूं कि उन्होंने कितनी कड़ी मेहनत की है और कितना समय, कभी–कभी तो आधी रात से भी अधिक, दिया है। मैं उन सभी के प्रयासों और सहयोग के लिए उन्हें धन्यवाद देना चाहता हूं। (करतल–ध्वनि)

यदि यह संविधान सभा केवल 'भानुमति का कुनबा' होती, एक बिना सीमेंटवाला कच्चा फुटपाथ, जिसमें एक काला पत्थर यहां और एक सफेद पत्थर वहां लगा होता और जिसमें प्रत्येक सदस्य या

गुट अपनी मनमानी करता तो प्रारूप समिति का कार्य बहुत कठिन हो जाता। तब अव्यवस्था के सिवाय कुछ न होता। अव्यवस्था की संभावना सभा के भीतर कांग्रेस पार्टी की उपस्थिति से शून्य हो गई, जिसने उसकी कार्यवाइयों में व्यवस्था और अनुशासन पैदा कर दिया। यह कांग्रेस पार्टी के अनुशासन का ही परिणाम था कि प्रारूप समिति प्रत्येक अनुच्छेद और संशोधन की नियति के प्रति आश्वस्त होकर उसे सभा में प्रस्तुत कर सकी। इसलिए सभा में प्रारूप संविधान के सुगमता से पारित हो जाने का सारा श्रेय कांग्रेस पार्टी को जाता है।

यदि इस संविधान सभा के सभी सदस्य पार्टी अनुशासन के आग घुटने टेक देते तो उसकी कार्यवाइयां बहुत फीकी होतीं। अपनी संपूर्ण कठोरता में पार्टी अनुशासन सभा को जी–हुजूरियों के जमावड़े में बदल देता। सौभाग्यवश, उसमें विद्रोही थे। वे थे श्री कामत, श्री डॉ. पी. एस. देशमुख, श्री सिधवा, प्रो. सक्सेना, और पं. ठाकुरदास भार्गव। इनके साथ मुझे प्रो. के.टी एस.शाह और पं. हृदयनाथ कुँजरू का भी उल्लेख करना चाहिए। उन्होंने जो बिंदु उठाए, उनमें से अधिकांश विचारात्मक थे। यह बात कि मैं उनके सुझावों को मानने के लिए तैयार नहीं था, उनके सुझावों की महत्ता को कम नहीं करती और न सभा की कार्यवाइयों को जानदार बनाने में उनके योगदान को कम आंकती है। मैं उनका कृतज्ञ हूं। उनके बिना मुझे संविधान के मूल सिद्धातों की व्याख्या करने का अवसर न मिला होता, जो संविधान को यंत्रवत् पारित करा लेने से अधिक महत्वपूर्ण था।

और अंत में, राष्ट्रपति महोदय, जिस तरह आपने सभा की कार्यवाई का संचालन किया है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं। आपने जो सौजन्यता और समझ सभा के सदस्यों के प्रति दर्शाई है वे उन लोगों द्वारा कभी भुलाई नहीं जा सकती, जिन्होंने इस सभा की कार्यवाइयों में भाग लिया है। ऐसे अवसर आए थे, जब प्रारूप समिति के संशोधन ऐसे आधारों पर अस्वीकृत किए जाने थे, जो विशुद्ध रूप से तकनीकी प्रकृति के थे। मेरे लिए वे क्षण बहुत आकुलता से भरे थे, इसलिए मैं विशेष रूप से आपका आभारी हूं कि आपने संविधान–निर्माण के कार्य में यांत्रिक विधिवादी रवैया अपनाने की अनुमति नहीं दी।

संविधान का जितना बचाव किया जा सकता था, वह मेरे मित्रों सर अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर और श्री टी.टी. कृष्णामाचारी द्वारा किया जा चुका है, इसलिए मैं संविधान की खूबियों पर बात नहीं करूंगा। क्योंकि मैं समझता हूं कि संविधान चाहे जितना अच्छा हो, वह बुरा साबित हो सकता है, यदि उसका अनुसरण करने वाले लोग बुरे हों। एक संविधान चाहे जितना बुरा हो, वह अच्छा सबित हो सकता है, यदि उसका पालन करनेवाले लोग अच्छे हों। संविधान की प्रभावशीलता पूरी तरह उसकी प्रकृति पर निर्भर नहीं है। संविधान केवल राज्य के अंगों–जैसे विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका–का प्रावधान कर सकता है। राज्य के इन अंगों का प्रचालन जिन तत्वों पर निर्भर है, वे हैं जनता और उनकी आकांक्षाओं तथा राजनीति को संतुष्ट करने के उपकरण के रूप में उनके द्वारा गठित राजनीतिक दल। यह कौन कह सकता है कि भारत की जनता और उनके दल किस तरह का आचरण करेंगे? अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए क्या वे संवैधानिक तरीके इस्तेमाल करेंगे या उनके लिए क्रांतिकारी तरीके अपनाऐंगे? यदि वे क्रांतिकारी तरीके अपनाते हैं तो संविधान चाहे जितना अच्छा हो, यह बात कहने के लिए किसी ज्योतिषी की आवश्यकता नहीं कि वह असफल रहेगा। इसलिए

जनता और उनके राजनीतिक दलों की संभावित भूमिका को ध्यान में रखे बिना संविधान पर कोई राय व्यक्त करना उपयोगी नहीं है।

संविधान की निंदा मुख्य रूप से दो दलों द्वारा की जा रही है–कम्युनिस्ट पार्टी और सोशलिस्ट पार्टी। वे संविधान की निंदा क्यों करते हैं ? क्या इसलिए कि वह वास्तव में एक बुरा संविधान है? मैं कहूंगा, 'नहीं।' कम्युनिस्ट पार्टी सर्वहारा की तानशाही के सिद्धांत पर आधारित संविधान चाहती है। वे संविधान की निंदा इसलिए करते हैं कि वह संसदीय लोकतंत्र पर आधारित है। सोशलिस्ट दो बातें चाहते हैं। पहली तो वे चाहते हैं कि संविधान यह व्यवस्था करे कि जब वे सत्ता में आएं तो उन्हें इस बात की आजादी हो कि वे मुआवजे का भुगतान किए बिना समस्त निजी संपत्ति का राष्ट्रीकरण या सामाजीकरण कर सकें। सोशलिस्ट जो दूसरी चीज चाहते हैं, वह यह है कि संविधान में दिए गए मूलभूत अधिकार असीमित होने चाहिए, ताकि यदि उनकी पार्टी सत्ता में आने में असफल रहती है तो उन्हें इस बात की आजादी हो कि वे न केवल राज्य की निंदा कर सकें, बल्कि उसे उखाड़ फेंकें।

मुख्य रूप से ये ही वे आधार हैं, जिनपर संविधान की निंदा की जा रही है। मैं यह नहीं कहता कि संसदीय प्रजातंत्र राजनीतिक प्रजातंत्र का एकमात्र आदर्श स्वरूप है। मैं यह नहीं कहता कि मुआवजे का भुगतान किए बिना निजी संपत्ति अधिगृहीत न करने का सिद्धांत इतना पवित्र है कि उसमें कोई बदलाव नहीं किया जा सकता। मैं यह भी नहीं कहता कि मौलिक अधिकार कभी असीमित नहीं हो सकते और उनपर लगाई गई सीमांए कभी हटाई नहीं जा सकतीं। मैं जो कहता हूं, वह यह है कि संविधान में अंतर्निहित सिद्धांत वर्तमान पीढ़ी के विचार हैं। यदि आप इसे अत्युक्ति समझें तो मैं कहूंगा कि वे संविधान सभा के सदस्यों के विचार हैं। उन्हें संविधान में शामिल करने के लिए प्रारूप समिति को क्यों दोष दिया जाए। इस संबंध में महान् अमेरिकी राजनेता जेफरसन ने बहुत सारगर्भित विचार व्यक्त किए हैं, कोई भी संविधान–निर्माता जिनकी अनदेखी नहीं कर सकते। एक स्थान पर उन्होंने कहा है–

"हम प्रत्येक पीढ़ी को एक निश्चित राष्ट्र मान सकते हैं, जिसे बहुमत की मनसा के द्वारा स्वयं को प्रतिबंधित करने का अधिकार है; परंतु जिस तरह उसे किसी अन्य देश के नागरिकों को प्रतिबंधित करने का अधिकार नहीं है, ठीक उसी तरह भावी पीढ़ियों को बांधने का अधिकार भी नहीं है।"

एक अन्य स्थान पर उन्होंने कहा है–

"राष्ट्र के उपयोग के लिए जिन संस्थाओं की स्थापना की गई है, उन्हें अपने कृत्यों के लिए उत्तरदायी बनाने के लिए भी उनके संचालन के लिए नियुक्त लोगों के अधिकारों के बारे में भ्रांत धारणाओं के अधीन यह विचार कि उन्हें छेड़ा या बदला नहीं जा सकता, एक निरंकुश राजा द्वारा सत्ता के दुरूपयोग के खिलाफ एक सराहनीय प्रावधान हो सकता है, परंतु राष्ट्र के लिए वह बिलकुल बेतुका है। फिर भी हमारे अधिवक्ता और धर्मगुरू यह मानकर इस सिद्धांत को लोगों के गले उतारते हैं कि पिछली पीढ़ियों की समझ हमसे कहीं अच्छी थी। उन्हें वे कानून हम पर थोपने का अधिकार था, जिन्हें

हम बदल नहीं सकते थे और उसी प्रकार हम भी ऐसे कानून बनाकर उन्हें भावी पीढ़ियों पर थोप सकते हैं, जिन्हें बदलने का उन्हें भी अधिकार नहीं होगा। सारांश यह कि धरती पर मृत व्यक्तियों का हक है, जीवित व्यक्तियों का नहीं।"

मैं यह स्वीकार करता हूं कि जो कुछ जेफरसन ने कहा, वह केवल सच ही नहीं, परम सत्य है। इस संबंध में कोई संदेह हो ही नहीं सकता। यदि संविधान सभा ने जेफरसन के उस सिद्धांत से भिन्न रूख अपनाया होता तो वह निश्चित रूप से दोष, बल्कि निंदा की भागी होती। परंतु मैं पूछता हूं कि क्या उसने सचमुच ऐसा किया है? इससे बिलकुल विपरीत। कोई केवल संविधान के संशोधन संबंधी प्रावधान की जांच करे। सभा न केवल कनाडा की तरह संविधान में संशोधन संबंधी जनता के अधिकार को नकारने के जरिए या ऑस्ट्रेलिया की तरह संविधान संशोधन को असाधारण शर्तों की पूर्ति के अधीन बनाकर उसपर अंतिमता और अमोघता की मुहर लगाने से बची है, बल्कि उसने संविधान संशोधन की प्रक्रिया को सरलतम बनाने के प्रावधान भी किए हैं। मैं संविधान के किसी भी आलोचक को यह साबित करने की चुनौती देता हूं कि भारत में आज बनी हुई स्थितियों जैसी स्थितियों में दुनियां की किसी संविधान सभा ने संविधान संशोधन की इतनी सुगम प्रक्रिया के प्रावधान किएं हैं! जो लोग संविधान से असंतुष्ट हैं, उन्हें केवल दो–तिहाई बहुमत प्राप्त करना है और वयस्क मताधिकार के आधार पर यदि वे संसद् में दो–तिहाई बहुमत भी प्राप्त नहीं कर सकते तो संविधान के प्रति उनके अंसतोष को जन–समर्थन प्राप्त है, ऐसा नहीं माना जा सकता।

संवैधानिक महत्व का केवल एक बिंदु ऐसा है, जिस पर मैं बात करना चाहूंगा। इस आधार पर गंभीर शिकायत की गई है कि संविधान में केंद्रीयकरण पर बहुत अधिक बल दिय गया है और राज्यों की भूमिका नगरपालिकाओं से अधिक नहीं रह गई है। यह स्पष्ट है कि यह दृष्टिकोण न केवल अतिश्योक्तिपूर्ण है बल्कि संविधान के अभिप्रायों के प्रति भ्रांत धारणाओं पर आधारित है। जहां तक केंद्र और राज्यों के बीच संबंध का सवाल है, उसके मूल सिद्धांत पर ध्यान देना आवश्यक है। संघवाद का मूल सिद्धांत यह है कि केंद्र और राज्यों के बीच विधायी और कार्यपालक शक्तियों का विभाजन केंद्र द्वारा बनाए गए किसी कानून के द्वारा नहीं बल्कि स्वयं संविधान द्वारा किया जाता है। संविधान की व्यवस्था इस प्रकार है। हमारे संविधान के अंतर्गत अपनी विधायी या कार्यपालक शक्तियों के लिए राज्य किसी भी तरह से केंद्र पर निर्भर नहीं हैं। इस विषय में केंद्र और राज्य समानाधिकारी हैं। यह समझना कठिन है कि ऐसे संविधान को केंद्रवादी कैसे कहा जा सकता है। यह संभव है कि संविधान किसी अन्य संघीय संविधान के मुकाबले विधायी और कार्यपालक प्राधिकार के उपयोग के विषय में केंद्र के लिए कहीं अधिक विस्तृत क्षेत्र निर्धारित करता हो। यह भी संभव है कि अवशिष्ट शक्तियां केंद्र को दी गई हों, राज्यों को नहीं। परंतु ये व्यवस्थाएं संघवाद का मर्म नहीं हैं। जैसा मैंने कहा, संघवाद का प्रमुख लक्षण केंद्र और इकाईयों के बीच विधायी और कार्यपालक शक्तियों का संविधान द्वारा किया गया विभाजन है। यह सिद्धांत हमारे संविधान में सन्निहित है। इस संबंध में कोई भूल नहीं हो सकती। इसलिए, यह कहना गलत होगा कि राज्यों को केंद्र के अधीन रखा गया है। केंद्र अपनी ओर से इस विभाजन की सीमा–रेखा को परिवर्तित नहीं कर सकता और न न्यायपालिका ऐसा कर सकती है। क्योंकि, जैसा बहुत सटीक रूप से कहा गया है–

"अदालतें मामूली हेर–फेर कर सकती हैं, प्रतिस्थापित नहीं कर सकतीं। वे पूर्व व्याख्याओं को नए तर्कों का स्वरूप दे सकती हैं, नए दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकती हैं, वे सीमांत मामलों में विभाजक रेखा को थोड़ा खिसका सकती हैं; परंतु ऐसे अवरोध हैं, जिन्हें वे पार नहीं कर सकती; शक्तियों का सुनिश्चित निर्धारण है, जिन्हें वे पुनरावंटित नहीं कर सकतीं। वे वर्तमान शक्तियों का सुनिश्चित क्षेत्र बढ़ा सकती हैं, परंतु एक प्राधिकारी को स्पष्ट रूप से प्रदान की गई शक्तियों को किसी अन्य प्राधिकारी को हस्तांतरित नहीं कर सकतीं।"

इसलिए, संघवाद को कमजोर बनाने का पहला आरोप स्वीकार्य नहीं है।

दूसरा आरोप यह है कि केंद्र को ऐसी शक्तियां प्रदान की गई हैं, जो राज्यों की शक्तियों का अतिक्रमण करती हैं। यह आरोप स्वीकार किया जाना चाहिए। परंतु केंद्र की शक्तियों को राज्य की शक्तियों से ऊपर रखनेवाले प्रावधानों के लिए संविधान की निंदा करने से पहले कुछ बातों को ध्यान ध्यान में रखना चाहिए। पहली यह कि इस तरह की अभिभावी शक्तियां संविधान के सामान्य स्वरूप का अंग नहीं हैं। उनका उपयोग और प्रचलन स्पष्ट रूप से आपातकालीन स्थितियों तक सीमित किया गया है। ध्यान में रखने योग्य दूसरी बात है – आपातकालीन स्थितियों से निपटने के लिए क्या हम केंद्र को अभिभावी शक्तियां देने से बच सकते हैं? जो लोग आपातकालीन स्थितियों में भी केंद्र को ऐसी अभिभावी शक्तियां दिए जाने के पक्ष में नहीं हैं वे इस विषय के मूल में छिपी समस्या से ठीक से अवगत प्रतीत नहीं होते। इस समस्या का सुविख्यात पत्रिका 'द राउंड टेबल' के दिसंबर 1935 के अंक में एक लेखक द्वारा इतनी स्पष्टता से बचाव किया गया है कि मैं उसमें से यह उद्धरण देने के लिए क्षमाप्रार्थी नहीं हूं। लेखक कहते हैं –

"राजनीतिक प्रणालियां इस प्रश्न पर अवलंबित अधिकारों और कर्तव्यों का एक मिश्रण हैं कि एक नागरिक किस व्यक्ति या किस प्राधिकारी के प्रति निष्ठावान् रहे। सामान्य क्रियाकलापों में यह प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि कानून सुचारू रूप से अपना कार्य करता है और एक व्यक्ति अमुक मामलों में एक प्राधिकारी और अन्य मामलों में किसी अन्य प्राधिकारी के आदेश का पालन करता हुआ अपने काम निपटाता है। परंतु एक आपातकालीन स्थिति में प्रतिद्वंद्वी दावे पेश किए जा सकते हैं और ऐसी स्थिति में यह स्पष्ट है कि अंतिम प्राधिकारी के प्रति निष्ठा अविभाज्य है। निष्ठा का मुद्दा अंततः संविधियों की न्यायिक व्याख्याओं से निर्णीत नहीं किया जा सकता। कानून को तथ्यों से समीचीन होना चाहिए, अन्यथा वह प्रभावी नहीं होगा। यदि सारी प्रक्रियात्मक औपचारिकताओं को एक तरफ कर दिया जाए तो निरा प्रश्न यह होगा कि कौन सा प्राधिकारी एक नागरिक की अवशिष्ट निष्ठा का हकदार है। वह केंद्र है या संबंधित राज्य?

इस समस्या का समाधान इस सवाल, जो कि समस्या का मर्म है, के उत्तर पर निर्भर है। इसमें कोई संदेह नहीं कि अधिकांष लोगों की राय में एक आपातकालीन स्थिति में नागरिक की अवशिष्ट निष्ठा अंगभूत राज्यों के बजाय केंद्र को निर्देशित होनी चाहिए; क्योंकि वह केंद्र ही है, जो सामूहिक उद्देश्य और संपूर्ण देश के सामान्य हितों के लिए कार्य कर सकता है। एक आपातकालीन स्थिति में केंद्र को अभिभावी शक्तियां प्रदान करने का यही औचित्य है। वैसे भी, इन आपातकालीन शक्तियों

से अंगभूत राज्यों पर कौन सा दायित्व थोपा गया है कि आपताकालीन स्थिति में उन्हें अपने स्थानीय हितों के साथ–साथ संपूर्ण राष्ट्र के हितों और मतों का भी ध्यान रखना चाहिए – इससे अधिक कुछ नहीं। केवल वही लोग, जो इस समस्या को समझे नहीं हैं, उसके खिलाफ शिकायत कर सकते हैं।

यहां पर मैं अपनी बात समाप्त कर देता; परंतु हमारे देश के भविष्य के बारे में मेरा मन इतना परिपूर्ण हैं कि मैं महसूस करता हूं, उसपर अपने कुछ विचारों को आपके सामने रखने के लिए इस अवसर का उपयोग करूं। 26 जनवरी, 1950 को भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र होगा। (करतल–ध्वनि) उसकी स्वतंत्रता का भविष्य क्या है? क्या वह अपनी स्वतंत्रता बनाए रखेगा या उसे फिर खो देगा? मेरे मन में आनेवाला यह पहला विचार है। यह बात नहीं है कि भारत कभी एक स्वतंत्र देश नहीं था। विचार बिंदु यह है कि जो स्वतंत्रता उसे उपलब्ध थी, उसे उसने एक बार खो दिया था। क्या वह उसे दूसरी बार खो देगा? यही विचार है, जो मुझे भविष्य को लेकर बहुत चिंतित कर देता है। यह तथ्य मुझे और भी व्यथित करता है कि न केवल भारत ने पहले एक बार स्वतंत्रता खोई है, बल्कि अपने ही कुछ लोगों के विश्वासघात के कारण ऐसा हुआ है। सिंध पर हुए मोहम्मद–बिन कासिम के हमले में राजा दाहिर के सैन्य अधिकारियों ने मुहम्मद–बिन–कासिम के दलालों से रिश्वत लेकर अपने राजा के पक्ष में लड़ने से इनकार कर दिया था। वह जयचंद ही था, जिसने भारत पर हमला करने एवं पृथ्वीराज से लड़ने के लिए मुहम्मद गोरी को आमंत्रित किया था और उसे अपनी व सोलंकी राजाओं को मदद का आश्वासन दिया था। जब शिवाजी हिंदुओं की मुक्ति के लिए लड़ रहे थे, तब कई मराठा सरदार और राजपूत राजा मुगल शहंशाह की ओर से लड़ रहे थे। जब ब्रिटिश सिख शासकों को समाप्त करने की कोशिश कर रहे थे तो उनका मुख्य सेनापति गुलाबसिंह चुप बैठा रहा और उसने सिख राज्य को बचाने में उनकी सहायता नहीं की। सन् 1857 में जब भारत के एक बड़े भाग में ब्रिटिश शासन के खिलाफ स्वातंत्रय युद्ध की घोषणा हो गई थी तब सिख इन घटनाओं को मूल दर्शकों की तरह खड़े देखते रहे।

क्या इतिहास स्वयं को दोहराएगा? यही वह विचार है, जो मुझे चिंता से भर देता है। इस तथ्य का एहसास होने के बाद यह चिंता और भी गहरी हो जाती है कि जाति व धर्म के रूप में हमारे पुराने शत्रुओं के अतिरिक्त अब हमारे यहां विभिन्न और विरोधी विचारधाराओं वाले राजनीतिक दल होंगे। क्या भारतीय देश को अपने मताग्रहों से ऊपर रखेंगे या उन्हें देश से ऊपर समझेंगे? मैं नहीं जानता। परंतु यह तय है कि यदि पार्टियां अपने मताग्रहों को देश से ऊपर रखेंगी तो हमारी स्वतंत्रता संकट में पड़ जाएगी और संभवतः वह हमेशा के लिए खो जाए। हम सबकों दृढ़ संकल्प के साथ इस संभाव्यता से बचना है। हमें अपने खून की आखिरी बूंद तक अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करनी है। (करतल–ध्वनि)

26 जनवरी, 1950 को भारत इस अर्थ में एक प्रजातांत्रिक देश बन जाएगा कि उस दिन से भारत में जनता की जनता द्वारा और जनता के लिए बनी एक सरकार होगी। यही विचार मेरे मन में आता है। उसका प्रजातांत्रिक संविधान का क्या होगा? क्या वह उसे बनाए रखेगा या उसे फिर से खो देगा? मेरे मन में आनेवाला यह दूसरा विचार है और यह भी पहले विचार जितना ही चिंताजनक है।

यह बात नहीं है कि भारत ने कभी प्रजातंत्र को जाना ही नहीं। एक समय था, जब भारत गणतंत्रों से भरा हुआ था और जहां राजसत्ताएं थीं वहां भी या तो वे निर्वाचित थीं या सीमित। वे कभी भी निरंकुश नहीं थीं। यह बात नहीं है कि भारत सांसदों या संसदीय क्रियाविधि से परिचित नहीं था। बौद्ध भिक्षु संघों के अध्ययन से यह पता चलता है कि न केवल संसदें–क्योंकि संघ संसद् के सिवाय कुछ नहीं थे– थीं बल्कि संघ संसदीय प्रक्रिया के उन सब नियमों को जानते और उनका पालन करते थे, जो आधुनिक युग में सर्वविदित है। सदस्यों के बैठने की व्यवस्था, प्रस्ताव रखने, कोरम व्हिप, मतों की गिनती, मतपत्रों द्वारा वोटिंग, निंदा प्रस्ताव, नियमितीकरण आदि संबंधी नियम चलन में थे। यद्यपि संसदीय प्रक्रिया संबधी ये नियम बुद्ध ने संघों की बैठकों पर लागू किए थे, उन्होंने इन नियमों को उनके समय में चल रही राजनीतिक सभाओं से प्राप्त किया होगा।

भारत ने यह प्रजातांत्रिक प्रणाली खो दी। क्या वह दूसरी बार उसे खोएगा? मैं नहीं जानता; परंतु भारत जैसे देश में यह बहुत संभव है – जहां लंबे समय से उसका उपयोग न किए जाने को एक बिलकुल नई चीज समझा जा सकता है – कि तानाशाही प्रजातंत्र का स्थान ले ले। इस नवजात प्रजातंत्र के लिए यह बिलकुल संभव है कि वह आवरण प्रजातंत्र का बनाए रखे, परंतु वास्तव में वह तानाशाही हो। चुनाव में महाविजय की स्थिति में दूसरी संभावना के यथार्थ बनने का खतरा अधिक है।

प्रजातंत्र को केवल बाह्य स्वरूप में ही नहीं बल्कि वास्तव में बनाए रखने के लिए हमें क्या करना चाहिए? मेरी समझ से, हमें पहला काम यह करना चाहिए कि अपने सामाजिक और आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए निष्ठापूर्वक संवैधानिक उपायों का ही सहारा लेना चाहिए। इसका अर्थ है, हमें क्रांति का खूनी रास्ता छोड़ना होगा। इसका अर्थ है कि हमें सविनय अवज्ञा आंदोलन, असहयोग और सत्याग्रह के तरीके छोड़ने होंगे। जब आर्थिक और सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का कोई संवैधानिक उपाय न बचा हो, तब असंवैधानिक उपायों का कोई औचित्य नहीं है। ये तरीके अराजकता के व्याकरण के सिवाय कुछ भी नहीं हैं और जितनी जल्दी इन्हें छोड़ दिया जाए, हमारे लिए उतना ही अच्छा है।

दूसरी चीज जो हमें करनी चाहिए, वह है जॉन स्टुअर्ट मिल की उस चेतावनी को ध्यान में रखना, जो उन्होंने उन लोगों को दी है, जिन्हें प्रजातंत्र को बनाए रखने में दिलचस्पी है, अर्थात "अपनी स्वतंत्रता को एक महानायक के चरणों में भी समर्पित न करें या उसपर विश्वास करके उसे इतनी शक्तियां प्रदान न कर दें कि वह संस्थाओं को नष्ट करने में समर्थ हो जाए।" उन महान् व्यक्तियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने में कुछ गलत नहीं है, जिन्होंने जीवनपर्यंत देश की सेवा की हो। परंतु कृतज्ञता की भी कुछ सीमाएं होती हैं। जैसा की आयरिश देशभक्त डेनियल ओ कॉमेल ने क्या खूब कहा है, "कोई पुरूष अपने सम्मान की कीमत पर कृतज्ञ नहीं हो सकता, कोई महिला अपने सतीत्व की कीमत पर कृतज्ञ नहीं हो सकती और कोई राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता की कीमत पर कृतज्ञ नहीं हो सकता।" यह सावधानी किसी अन्य देश के मुकाबले भारत के मामले में अधिक आवश्यक है, क्योंकि भारत में भक्ति या नायक–पूजा उसकी राजनीति में जो भूमिका अदा करती है, उस भूमिका के परिमाण के मामले में दुनिया का कोई देश भारत की बराबरी नहीं कर सकता। धर्म के क्षेत्र में भक्ति आत्मा की मुक्ति का

मार्ग हो सकता है, परंतु राजनीति में भक्ति या नायक–पूजा पतन और अंततः तानाशाही का सीधा रास्ता है।

तीसरी चीज जो हमें करनी चाहिए, वह है कि मात्र राजनीतिक प्रजातंत्र पर संतोष न करना। हमें हमारे राजनीतिक प्रजातंत्र को एक सामाजिक प्रजातंत्र भी बनाना चाहिए। जब तक उसे सामाजिक प्रजातंत्र का आधार न मिले, राजनीतिक प्रजातंत्र चल नहीं सकता। सामाजिक प्रजातंत्र का अर्थ क्या है? वह एक ऐसी जीवन–पद्धति है जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को जीवन के सिद्धांतों के रूप में स्वीकार करती है। स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के इन सिद्धांतों को एक त्रयी के भिन्न घटकों के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए। वे इस अर्थ में एक एकात्म त्रयी बनते हैं कि एक से विमुख होकर दूसरे के पालन करने से प्रजातंत्र का लक्ष्य ही प्राप्त नहीं होगा। स्वतंत्रता को समानता से अलग नहीं किया जा सकता और न समानता को स्वतंत्रता से। इसी तरह, स्वतंत्रता और समानता को बंधुत्व से अलग नहीं किया जा सकता। समानता के बिना स्वतंत्रता बहुजन पर कुछ लोगों का दबदबा बना देगी। स्वतंत्रता के बिना समानता व्यक्तिगत उपक्रम को समाप्त कर देगी। बंधुत्व के बिना स्वतंत्रता और समानता सहज नहीं लगेंगी। उन्हें लागू करने के लिए हमेशा एक कांस्टेबल की जरूरत होगी। हमें इस तथ्य की स्वीकृति से आरंभ करना चाहिए कि भारतीय समाज में दो चीजों का नितांत अभाव है। उनमें से एक है समानता। सामाजिक धरातल पर भारत में बहुस्तरीय असमानता है – अर्थात् कुछ को विकास के अवसर और अन्य को पतन के। आर्थिक धरातल पर हमारे समाज में कुछ लोग हैं, जिनके पास अकूत संपति है और बहुत लोग घोर दरिद्रता में जीवन बिता रहे हैं। 26 जनवरी, 1950 को हम एक विरोधाभासी जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। हमारी राजनीति में समानता होगी और हमारे सामाजिक व आर्थिक जीवन में असमानता। राजनीति में हम एक व्यक्ति एक वोट और हर वोट का समान मूल्य के सिद्धांत पर चल रहे होंगे। परंतु अपने सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में हमारे सामाजिक एवं आर्थिक ढ़ांचे के कारण हर व्यक्ति एक मूल्य के सिद्धांत को नकार रहा होगा। इस विरोधाभासी जीवन को हम कब तक जीते रहेंगे। कब तक हम अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में समानता को नकारते रहेंगे। यदि हम इसे नकारना जारी रखते हैं तो हम केवल अपने राजनीतिक प्रजातंत्र को संकट में डाल रहे होंगे। हमें जितनी जल्दी हो सके, इस विरोधाभास को समाप्त करना होगा, अन्यथा जो लोग इस असमानता से पीड़ित हैं, वे उस राजनीतिक प्रजातंत्र को उखाड़ फेंकेंगे, जिसे इस सभा ने इतने परिश्रम से खड़ा किया है।

दूसरी चीज जो हम चाहते हैं, वह है बंधुत्व के सिद्धांत पर चलना। बंधुत्व का अर्थ क्या है? बंधुत्व का अर्थ है – सभी भारतीयों के बीच एक सामान्य भाईचारे का अहसास। यह एक ऐसा सिद्धांत है, जो हमारे सामाजिक जीवन को एकजुटता प्रदान करता है। इसे हासिल करना एक कठिन कार्य है। यह कितना कठिन कार्य है, इसे जेम्स ब्रायस द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका से संबंधित अमेरिकन राष्ट्रमंडल पर लिखी पुस्तक में दी गई कहानी से समझा जा सकता है।

कहानी है – मैं इसे स्वयं ब्रायस के शब्दों में ही उसे सुनाना चाहूंगा – कुछ साल पहले अमेरिकन प्रोटेस्टेंट एपिस्कोपल चर्च अपने त्रैवार्षिक सम्मेलन में अपनी उपासना – पद्धति संशोधित कर रहा था। छोटी पंक्तियोंवाली प्रार्थनाओं में समस्त नागरिकों के लिए एक प्रार्थना को शामिल करना वांछनीय

समझा गया और एक प्रतिष्ठित मॉडर्न इंग्लैंड के एक धर्मगुरू ने ये शब्द सुझाऐ – 'हे ईश्वर हमारे राष्ट्र पर कृपा कर।' दोपहर को तत्क्षण स्वीकार किया गया यह वाक्य अगले दिन पुनर्विचार के लिए प्रस्तुत किया गया तो जनसाधारण द्वारा 'राष्ट्र' शब्द पर इस आधार पर इतनी आपत्तियां उठाई गईं कि यह शब्द राष्ट्रीय एकता पर जरूरत से ज्यादा जोर देता है कि उसे त्यागना पड़ा और उसके स्थान पर ये शब्द स्वीकृत किए गये, 'हे ईश्वर! इन संयुक्त राज्यों पर कृपा कर।'

जब यह घटना हुई तब यू.एस.ए. में इतनी कम एकता थी कि अमेरिका की जनता यह नहीं मानती थी कि वे एक राष्ट्र हैं। यदि अमेंरिका की जनता यह महसूस नहीं करती थी कि वे एक राष्ट्र हैं तो भारतीयों के लिए यह सोचना कितना कठिन है कि वे एक राष्ट्र हैं। मुझे उन दिनों की याद है, जब राजनीतिक रूप से जागरूक भारतीय 'भारत की जनता'–इस अभिव्यक्ति पर अप्रसन्नता व्यक्त करते थे। उन्हें 'भारतीय राष्ट्र' कहना अधिक पंसद था। मेरे विचार से, यह सोचना कि हम एक राष्ट्र हैं, एक बहुत बड़ा भ्रम है। हजारों जातियों में विभाजित लोग कैसे एक राष्ट्र हो सकते हैं? जितनी जल्दी हम यह समझ लें कि इस शब्द के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक अर्थ में हम अब तक एक राष्ट्र नहीं बन पाये हैं, हमारे लिए उतना ही अच्छा होगा, क्योंकि तभी हम एक राष्ट्र बनने की की आवश्यकता को ठीक से समझ सकेंगे और उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए साधन जुटा सकेंगे। इस लक्ष्य की प्राप्ति बहुत कठिन साबित होने वाली है – उससे कहीं अधिक जितनी वह अमेरिका में रही है। अमेरिका में जाति की समस्या नहीं है। भारत में जातियां हैं। जातियां राष्ट्र–विरोधी हैं। पहली बात तो यह है कि वे जाति एवं जाति के बीच विद्वेश और वैर–भाव पैदा करती हैं। परंतु यदि हमें वास्तव में एक राष्ट्र बनना है तो कठिनाईयों पर विजय पानी होगी। क्योंकि बंधुत्व तभी स्थापित हो सकता है जब हमारा एक राष्ट्र हो। बंधुत्व के बिना स्वतंत्रता और समानता रंग की एक परत से अधिक गहरी नहीं होगी।

जो कार्य हमारे सामने खड़े हैं, उनपर ये मेरे विचार हैं। कई लोगों को वे बहुत सुखद नहीं लगेंगे, परंतु इस बात का कोई खंडन नहीं कर सकता कि इस देश में राजनीतिक सत्ता कुछ लोगों का एकाधिकार रही है और बहुजन न केवल बोझ उठानेवाले बल्कि शिकार किए जाने वाले जानवरों के समान हैं। इस एकाधिकार ने न केवल उनसे विकास के अवसर छीन लिये हैं, बल्कि उन्हें जीवन के किसी भी अर्थ या रस से वंचित कर दिया है। ये पद्दलित वर्ग शासित रहते–रहते अब थक गए हैं। अब वे स्वयं शासन करने के लिए बेचैन है। इन कुचले हुए वर्गों में आत्म–साक्षात्कार की इस ललक को वर्ग–संघर्ष या वर्ग–युद्ध का रूप ले लेने की इजाजत नहीं दी जानी चाहिए। यह हमारे घर को विभाजित कर देगा। वह एक अनर्थकारी दिन होगा। क्योंकि जैसा अब्राहम लिंकन ने बहुत अच्छे ढंग से कहा है, "अंदर से विभाजित एक घर ज्यादा दिनों तक तक खड़ा नहीं रह सकता।" इसलिए, उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए जितनी जल्दी उपयुक्त स्थितियां बना दी जाएं अल्पसंख्यक शासक वर्ग के लिए, देश के लिए, उसकी स्वतंत्रता और प्रजातांत्रिक ढ़ांचे को बनाए रखने के लिए उतना ही अच्छा होगा। जीवन के सभी क्षेत्रों में समानता और बंधुत्व स्थापित करके ही ऐसा किया जा सकता है। इसलिए, मैंने इन पर इतना जोर दिया है।

मैं सदन को और अधिक उकताना नहीं चाहता। निस्संदेह, स्वतंत्रता एक आनंद का विषय है।

परंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस स्वतंत्रता ने हम पर बहुत जिम्मेदारियां डाल दी हैं। स्वतंत्रता के बाद कोई भी चीज गलत होने पर ब्रिटिश लोगों को दोष देने का बहाना समाप्त हो गया है। अब यदि कुछ गलत होता है तो हम किसी और को नहीं, स्वयं को ही दोषी ठहरा सकेंगे। हमसे गलतियां होने का खतरा बहुत बड़ा है। समय तेजी से बदल रहा है। हमारे लोगों सहित दुनियां के लोग नई विचारधाराओं से प्रेरित हो रहे हैं। लोग जनता 'द्वारा' बनाई सरकार से उबने लगे हैं। वे जनता के 'लिए' सरकार बनाने की तैयारी कर रहे हैं और इस बात से उदासीन हैं कि वह सरकार जनता 'द्वारा' बनाई हुई जनता 'की' सरकार है। यदि हम संविधान को सुरक्षित रखना चाहते हैं, जिसमें जनता की, जनता के लिए और जनता द्वारा बनाई गई सरकार का सिद्धांत प्रतिष्ठापित किया गया है तो हमें यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि 'हम हमारे रास्ते खड़ी बुराईयों, जिनके कारण लोग जनता 'द्वारा' बनाई गई सरकार के बजाय जनता के लिए बनी सरकार को प्राथमिकता देते हैं, की पहचान करने और उन्हें मिटाने में ढिलाई नहीं करेंगे।' देश की सेवा करने का यही एक रास्ता है। मैं इससे बेहतर रास्ता नहीं जानता।

हमारे लेखक

योगेन्द्र लाल दास
पूर्व विभागाध्यक्ष, शोध एवं मूल्यांकन
राज्य संसाधन केन्द्र, दीपायतन
302, मौर्या टावर, मौर्यलोक कम्पलेक्स
बुद्ध मार्ग, पटना– 800001

रमा शंकर
असिस्टैंट प्रोफेसर
सरकारी पी. जी. कॉलेज
जयहरिखल, लैंसडान
पौड़ी, उत्तराखण्ड – 246 193

अस्मा
शिक्षा संकाय, कुमाऊं विश्वविद्यालय
एस. एस. जे. परिसर, अल्मोड़ा
उत्तराखण्ड

भीमा मनराल
शिक्षा संकाय, कुमाऊं विश्वविद्यालय
एस. एस. जे. परिसर, अल्मोड़ा
उत्तराखण्ड

लक्ष्मी रूपल
बी 3–201
निर्मल छाया टावर्स
वी आई पी रोड, जिकरपुर
मोहाली – 140603
पंजाब